6. वह योद्धा जिसका शस्त्र टूट गया है या जो अपना रथ गवाँ चुका हो, उस पर आक्रमण नहीं करना चाहिये।
7. जो योद्धा शरण के लिए अनुरोध करे, आत्म समर्पण कर दे या अपने शस्त्र दूर फेंक दे, उसका वध नही करना चाहिये, किन्तु वह युद्ध बन्दी के रुप में बन्दी बनाया जा सकता है।
8. एक राजा को राजा से ही युद्ध करना चाहिए न कि एक योद्धा या अपने निम्न स्तर के व्यक्ति से।
9. यदि कोई ब्राह्मण दोनो विरोधी पक्षों में शान्ति लेने के अभिप्राय से रण क्षेत्र में प्रवेश करे, तो दोनो दलों को युद्ध बन्द कर देना चाहिये तथा इस बात का ख्याल रखें कि ब्राहमण को कोई चोट न लगे।
10. वह व्यक्ति निन्दा का प्रात्र है जो युद्ध भूमि से भय की वजह से पीछे हट जाता है।
11. वृद्ध व्यक्ति, स्त्री, बच्चे, भागता हुआ व्यक्ति या वह जो दातों में कुशा दबाकर बिना शर्त आत्म समर्पण का संकेत करता हो, का वध नहीं करना चाहिये।
12. आतंक से व्यथित व्यक्ति और बिखरे हुए शत्रु का तीव्र गति से पीछा नहीं करना चाहिए।
13. निद्रातुर या तृष्णातुर, क्लांत या श्लथ, कवच वाले शान्तिप्रिय नागरिक जो कि पथ पर चल रहा हो, पनहार, या भोजनरत व्यक्ति, कैम्प से सामान खरीदने बाहर जा रहे सैनिक, अनुचर या चाटक के सन्तरियों का वध नहीं करना चाहिए।
14. सेना के किसी विभाग में यदि पर्याप्त संख्या न हो तो युद्ध में स्थानन्तर के रुप में दूसरों को प्रवेश में लाया जा सकता है। जैसे एक हाथी के लिए पाँच घोड़े या पन्द्रह आदमी और चार घोड़े, इसी प्रकार एक घुड़सवार तीन पैदल सैनिक और तीन घुड़सवार सैनिक एक हस्ति सैनिक के द्वारा प्रतिरोध के रुप में युद्ध लड़ सकता था।
15. हिजड़ों और युद्ध संगीतज्ञ को नहीं मारना चाहिए।
16. किसी भी ब्राह्मण को चाहे वह जाति से ब्राह्मण हो या देशों ने अथवा जिसने स्वयं को ब्राह्मण घोषित किया हो, नहीं मारना चाहिए।
17. उनसे युद्ध करना जो युद्ध के लिए तैयार न हो या जो पद से छिपे हो या जो कि दर्शक हो, को मारना मना था।
18. धर्म युद्ध की एक और विशेषता थी कि फल और फूल के बगीचे, मन्दिर और पूजा के स्थल किसी भी नुकसान की कार्यवाही से परे थे।
19. युद्ध बन्दि को उदार चिकित्सा प्रदान की जाती थी।
20. यदि बन्दि एक वर्ष तक विजेता का दास बनना स्वीकार लेता था तो उस अवधि के उपरान्त उसे स्वतंत्र कर दिया जाता था।
21. सामान्यत: पराजित राजा को पुन: उसकी गद्दी प्रदान कर दी जाती थी, किन्तु यदि राजा युद्ध में मारा जाता था तो उसके पुत्र या निकट सम्बंधि को सहयोगी गुट के आधार पर गद्दी प्रदान कर दी जाती थी।
22. युद्ध में घायल व्यक्ति को उसके घर भेज दिया जाता था या अच्छे चिकित्सक से चिकित्सा कराकर उसे स्वतंत्र कर दिया जाता था।

उक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय की परम्परा थी कि सूर्योदय के साथ युद्ध प्रारम्भ और सूर्यास्त के साथ समाप्त हो जाता था। इसका पालन महाभारत के युद्ध में भी किया गया।

प्रश्न.4. झेलम के युद्ध (326 ई.पू.) की व्याख्या कीजिए। (2013)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. झेलम के युद्ध 326 ई.पू. में सिकन्दर की विजय के कारण बताइये। (2009, 13)

प्रश्न. झेलम के संग्राम (326 ई.पू.) का स्रातेजिक एवं सामरिक दृष्टिकोण से प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिए। (2011)

प्रश्न. 326 ई.पू. में झेलम के युद्ध में सिकंदर द्वारा नदी पार करने की संक्रिया की विवेचना कीजिए। (2012)

प्रश्न. झेलम के युद्ध 326 ई. पू. में पोरस की हार के कारणों की विवेचना कीजिए। (2005, 07)

उत्तर - झेलम का संग्राम (326 ई.पू.): -

उत्तरी पश्चिमी सीमा से भारत के मैदानों में प्रवेश करने वाले विदेशी आक्रमणियों द्वारा लड़े गए अनेक युद्धों में से झेलम का संग्राम पहला है। जिसका इतिहास में अभिलिखित वर्णन मिलता है। होगार्थ का विचार है कि यूनानियों द्वारा झेलम नदि पार करना प्रचीन युद्धकला की सबसे अद्वितीय संक्रिया है।

सिकंदर (एलेक्जेण्डर) की सबसे महत्वपूर्ण इस मुहिम का प्रारम्भिक बिन्दु तक्षशिला था और यहाँ यह मान लेना उचित प्रतीत होता है कि तब सिकंदर अपनी सेना के साथ यहाँ विश्राम कर रहा था, तब उसने तक्षशिला के निवासियों से इस देश की प्रकृति के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी परन्तु इस संदर्भ में कुछ भी अभिलिखित नही है कि सिकंदर ने तक्षशिला से झेलम के तट तक किस मार्ग का अनुसरण किया? प्लिनी के अनुसार सिकंदर के सर्वेक्षकों द्वारा तक्षशिला से झेलम तक के बीच की दूरी 120 रोमन मील (110.5 मील) मापी गयी थी। स्ट्रैबो के अनुसार झेलम के लिए प्रयाण की दिशा लगभग दक्षिण की ओर थी।

तक्षशिला से प्रस्थान करने से पूर्व सिकंदर ने झेलम और चिनाब नदियों के बीच स्थित पोरस के साम्रज्य के विषय में जानकानी प्राप्त की। जिसने आक्रमणकारी विरोध करने के लिए झेलम नदी के पूर्वी तट स्थित मार्गों पर कब्जा किए हुए था। सिकंदर ने अपने एक सेनापति कोयन को आदेश दिया कि वह सिंधु नदी के नावों के पुल तोड़ दे तथा छोटी नावों को दो भागों में तथा बड़े पोतों को तीन भागों में विभक्त कर स्थल मार्ग से झेलम नदि के तट पर पहुँचे। सिकंदर ने स्वयं सेना को लेकर तक्षशिला के पाँच सहस्र सैनिकों के स्वामि अम्भि के साथ झेलम की ओर प्रस्थान किया। झेलम नदि काफी चौड़ी थी और उसके पूर्व किनारे पर पोरस ने घाटों की सुरक्षा के लिए अपने हाथी तैनात कर रखे थें।

झेलम नदि पार करने की संक्रिया: -

सभी घाट पिकेट्स और हाथियों द्वारा सुरक्षित होने के कारण सिकन्दर ने महसुस किया कि उसके घोड़े न तो तैर कर और न ही बेड़ों के द्वारा नदी पार ता सकते थे, क्योंकि जब वे पानी में होते थे या अपने बेड़ों पर हाथियों के चिघाडने का सामना हीं कर सकते थे और उतेजित हो जाते थे।

छोटी टुकड़ियाँ नदी पार करने योग्य सभी स्थानों की टोह लगाने के लिए भेजी गयीं, सिकंदर ने सेना को विभिन्न दलों में विभाजित किया और नदी के बहाव के साथ नीचे और नदी के बहाव के विपरीत ऊपर की ओर प्रयाण किया और नदी पार करने का स्थान ढूँढ निकाला। इसके बाद कर्क ग्रकान्ति से थोड़े पहले वर्षा प्रारम्भ हुई और नदी में पानी बढ़ गया। उसने पड़ाव में सभी दिशाओं से खाद्य साम्रगी एकत्रित करने का आदेश दिया, ताकि पोरस को विश्वास दिलाया जा सके कि वह सूखे मौसम तक वहीं रुकना चाहता है। ठीक इसी बीच उसने नीचे और ऊपर नाव की सहायता से नदी की टोह ली और चमड़े के तम्बुओं में घास फूस भर कर बेड़ों में बदलने का आदेश दिया। जैसा कि एरियन ने लिखा है कि पोरस सदैव इस ताक में लगा रहता था कि कहीं सिकंदर तीव्र गति से ऐसे किसी मार्ग से नदी को न पार कर ले, जो कि उसके निरिक्षण मे न हो।

सिकंदर अपनी सेना को नदी के साथ बहाव के विपरीत दिशा में प्रातः ले जाता था और सांय काल वापस ले आता था। उसकी इस कार्यवाही के कारण नदी के दूसरे किनारे पर पोरस के हाथी भी दौड़ते

थे। कुछ दिनों बाद पोरस को विश्वास हो गया कि सिकंदर का नदी पार करने का अभी कोई इरादा नहीं है और उसने अपने हाथी वापस बुला लिए और नदी के पूर्वी किनारों पर स्काउटों को तैनात कर दिया। सिकंदर ने इस कार्यवाही के साथ अपनी नावों को तथा चमड़े की मशकों को नदी पार करने के लिए निर्धारित स्थान तक पहुँचा दिया जिसकी सूचना पोरस को नहीं मिल सकी।

जब सिकंदस पोरस को यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि सिकंदर द्वारा रात में नदी पार करने के प्रयास से भयभीत होने की आवश्यक्ता नहीं है, तब उसने छल युक्ति का अनुसरण किया। उसने झेलम नदी के किनारे पर सैन्य टुकड़ियों की पूरी एक श्रंखला निर्मित कर दी, जो एक दूसरे को देख और सुन सकते थे और उन्हे आदेश दिया कि वे अपनी मशालें प्रज्जवलित दशा में रखें, जबकि नदी पार करने की वास्तविक तैयारी को पड़ाव पर अन्तिम स्वरुप दिया जा रहा था।

पोरस द्वारा पूरी शक्ति से रक्षित झेलम नदी को पार करने की सिकंदर की योजना बहुत ही सूझबूझ युक्त थी। Turning force की गतिविधियों से पोरस को अनभिज्ञ रखकर आश्चर्य चकित करने के उद्देश्य से सिकंदर ने Turning Force को छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त होकर रात के समय नदी पार करने का आदेश दिया। इन प्रतीयमान परस्पर विरोधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सिकंदर ने पोरस की तुलना में पर्याप्त सैन्य शक्ति के साथ क्रेटरस को हरनपुर में ही छोड़ने का निश्चय किया और Turning force को दो टुकड़ियों में गठित किया। प्रथम अग्रगामी टुकड़ी का नेतृत्व सिकंदर स्वयं कर रहा था जिसे जलालपुर व हरनपुर के बीच पूर्व निश्चित घाट पर स्थान ग्रहण करना था। इसके उपरान्त जब वह अग्रिम दल के साथ नदी पार करके धारा की दिशा में आगे बढ़ कर विभिन्न घाटों की रक्षा में संलग्न भारतीय सेना को वहाँ से हटने के लिए बाध्य कर देगा, तब पार्श्व दल नदी पार करके उसके साथ मिल जायेगा। हार्डुक व्याख्या एरियन के विवरण के आधार पर टार्न महोदय ने प्रस्तुत की है। सिकंदर ने झेलम नदी के पश्चिम किनारे पर स्थित मुख्य पड़ाव पर क्रेटरस के नेतृत्व में लगभग 3000 घुड़सवार और 8000 पैदल सैनिक के दल को रुकने का आदेश दिया, जिसमें तक्षशिला के 5000 भारतीय सैनिक भी थे। इस दल को नदी पार करने की इजाजत तब तक नहीं थी जब तक की या तो पोरस turning force का सामना करने के लिए उस की ओर बढ़े या भागने का प्रयास करे।

परन्तु सिकंदर ने कहा कि यदि पोरस अपनी सेना के एक भाग के साथ मेरा सामना करने के लिए आगे बढे और एक भाग को पड़ाव पर ही छोड़ दे और उसके साथ एक हाथी भी हो, तब तुम अपने स्थान पर रुके रहोगे, फिर भी यदि पोरस अपने सभी हाथियों के साथ मेरे विरुध बढ़े तब तुम पूरी सेना सहित नदी पार करना। क्योंकि वे केवल हाथी ही है जो घोड़ों को नदी पार करने की दृष्टि से खतरनाक है, शेष सेना के लिए हाथी कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न कर सकते थे।

पड़ाव एवं नदी पार करने के स्थान पर सभी तैयारियाँ पूरी हो जाने के उपरान्त एवं पोरस को अपनी सुरक्षा व्यवस्था की अभेद्यता का विश्वास दिलाने के बाद, सिकंदर ने गोपनीय तरीके से नदी के पश्चिमी किनारे से कुछ हट कर प्रयाण किया। एरियन लिखता है कि सिकंदर ने नदी पार करने में प्रयुक्त सभी उपकरणों को विशेषकर चप्पू वाले पोतों, नावों तथा बेड़ो को कन्दारकस नाले में छिपा दिया था।

एक रात सेना ने पोतारोहण प्रारम्भ किया। उसी समय तूफानी वर्षा और बादलों की गरज ने turning force की गतिविधियों से उत्पन्न आवाज को ढक दिया और घुड़सवार सेना बेड़ो पर और पैदल सेना अपनी नावों और पोतों में सवार होकर झेलम नदी के मध्य में पहुँच गयी, परन्तु जैसे ही अग्रिम दल नदी के पूर्वी भाग में स्थित नाले को पार करने के लिए आगे बढ़ा पोरस के स्काउटों ने देख लिया और वे इस समाचार के साथ पोरस की ओर भागे। दूसरी ओर सिकंदर को जब यह पता चला कि नदी के पूर्वी तट पर आसानी से नहीं पहुँचा जा सकता है, क्योंकि द्वीप के पूर्वी भाग में स्थित पतली सी नदी पर्वतों से आये हुए वर्षा के जल के कारण एक उफनती हुई प्रचंड धारा बन के पूर्वी किनारे से टकरा रही थी, जिससे नदी के पूर्वी किनारे का निचला सिरा डूब गया था और ऊँचे किनारे की काफी जमीन कट कर बहने लगी थी।

सिकंदर का धैर्य किसी भी विपदा से
नाव को सबसे पहले आगे बढाया और उसके पी
नदी के पूर्वी भाग को पार किया। यूनानी इतिहा
के पूर्वी भाग को पार करना सरल था परन्तु अब
के सिर्फ सिर दिखायी दे रहे थे। इस संक्रिया के
गयी, परंतु शेष नदी को पार करने में सफल रहे
रात का संकट समाप्त हो चुका था। सिकंदर द
हुआ।

पोरस की द्विविधा: -

पोरस की



यदि पोरस क्रेटरस के विरुद्ध बना रहता
या उस पर आक्रमण करता है तो सिकंद
उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।



यदि पोरस क्रेटरस के विरुद्ध बना रहता
परन्तु अपने दायें पार्श्व को घुमाता है
सिकंदर उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करे

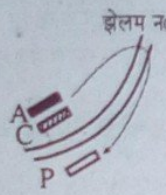


यदि पोरस दक्षिण की ओर पीछे हटता
है तो सिकंदर अपनी अश्वारोही सेना
के साथ रोकेगा और क्रेटरस उसके पृष्ठ
भाग पर आक्रमण करेगा।

सिकंदर का धैर्य किसी भी विपदा से नहीं टूटा। उसने अग्रिम दल का नेतृत्व करते हुए अपनी नाव को सबसे पहले आगे बढाया और उसके पीछे सम्पूर्ण सेना ने नावों, पोतों और बेडों पर सवार होकर नदी के पूर्वी भाग को पार किया। यूनानी इतिहासकारों ने लिखा है कि रात को वर्षा नहीं हुई होती तो नदी के पूर्वी भाग को पार करना सरल था परन्तु अब जलमग्न तट पर छाती भर पानी में तैर कर पहुँचे और घोडों के सिर्फ सिर दिखायी दे रहे थे। इस संक्रिया के क्रियान्वयन में केवल एक नाव चट्टान से टकरा कर डूब गयी, परंतु शेष नदी को पार करने में सफल रहीं। इस समय सूर्य निकल आया था। वर्षा थम गयी थी और रात का संकट समाप्त हो चुका था। सिकंदर दृढ संकल्प और परिश्रम का यह प्रतीकात्मक पुरस्कार प्राप्त हुआ।

पोरस की द्विविधा: -

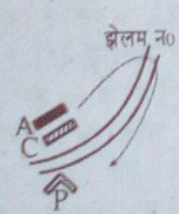
पोरस की द्विविधा



यदि पोरस क्रेटरस के विरुद्ध बना रहता है या उस पर आक्रमण करता है तो सिकंदर उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।



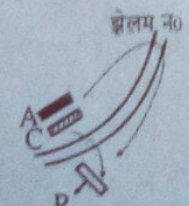
यदि पोरस सिकंदर के विरुद्ध आगे बढ़ता है तो क्रेटरस पृष्ठ भाग से आक्रमण करेगा।



यदि पोरस क्रेटरस के विरुद्ध बना रहता है परन्तु अपने दायें पार्श्व को घुमाता है तो सिकंदर उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।



यदि पोरस सेना की एक टुकड़ी क्रेटरस के विरुद्ध छोड़ देता है और स्वयं सिकंदर के विरुद्ध बढ़ता तब सिकंदर या तो उसके दाहिने ओर से घूम कर पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर सकता है या तो उसके बायें भाग पर आक्रमण कर सकता है और क्रेटरस के लिए पृष्ठ भाग पर आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।



यदि पोरस दक्षिण की ओर पीछे हटता है तो सिकंदर अपनी अश्वारोही सेना के साथ रोकेगा और क्रेटरस उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।



यदि पोरस पूरब दिशा की ओर हटता है तो सिकंदर अपनी अश्वारोही सेना से उसे रोकेगा और क्रेटरस पीछे आक्रमण करेगा।

सिकंदर की सेना के अवरोहण और युद्ध विन्यास में निश्चय ही कई घण्टे लगे होंगे। अतः पोरस के पास इस संकट का सामना करने की योजना बनाने का पर्याप्त समय था। उसने सोचा यदि वह turning force का सामना करने के लिए आगे बढता है तो वह हरनपुर घाट पर अपना नियंत्रण खो देगा। एसी स्थिति मे पोरस की दुविधा को फुलर महोदय ने बडे ही तर्कसंगत तरीके स्पष्ट किया है।

1. यदि पोरस क्रेटरस के विरुध बना रहता है या उस पर आक्रमण करता है तो सिकंदर उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।
2. यदि पोरस सिकंदर के विरुध बढता है तो क्रेटरस उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।
3. यदि पोरस क्रेटरस के विरुध बना रहता है परन्तु अपने दाये पार्श्व को पीछे की ओर घुमाता है तो सिकंदर पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।
4. यदि पोरस सेना कि एक टुकडी क्रेटरस के विरुध छेड देता है और सिकंदर के विरुध बढता है तो सिकंदर या तो उसके दाहिनी ओर से घूम कर पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर सकता है या तो उसके बाये भाग पर आक्रमण कर सकता है और क्रेटरस के लिए उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण हेतु मार्ग प्रशस्त कर सकता है।
5. यदि पोरस दक्षिण दिशा की ओर पीछे हटता है तो सिकंदर अपनी अश्वारोही सेना के साथ स्वयं और क्रेटरस उसके पृष्ठ भाग पर आक्रमण करेगा।
6. यदि पोरस पूरब दिशा की ओर हटता है तो सिकंदर अपनी अश्वारोही सेना के साथ स्वयं और क्रेटरस पीछे से अक्रमण करेगा।

युद्ध की संक्रियाः -

पोरस ने युक्तियुक्त कार्य किया परंतु बहुत देर से किया। टालमी के अनुसार उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को 2000 अश्वारोही और 120 रथों के साथ भेजा। यद्यपि यह ज्ञात नहीं है कि उसने उसे क्या आदेश दिया? क्योंकि उसने जो सेना प्रदान की गई वह टोही दल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। फिर भी यह कल्पना की जा सकती है कि उसका लक्ष्य आक्रमणकारी को नदी के पानी में प्रवेश देना था।

जब पोरस का बडा पुत्र दिखायी दिया तो सिकंदर को पहले लगा कि उसकी सेनाएं घोडे सेना की अग्रिम दल है और इसे अपनी धनुर्धर अश्वरोही सेना द्वारा रोक सकता है। सिकंदर ने सेना विरचना से पूर्व अपनी अश्वरोही सेना का नेतृत्व करते हुए उसे मुख्य सेना के साथ जोड दिया। परन्तु ज्यों ही उसे अपने स्काउट से इस सेना की शक्ति के बारे में सूचना मिली, उसने उसे नष्ट करने का निश्चय किया। सिकंदर की अश्वरोही सेना द्वारा की गई कार्यवाही में पोरस का पुत्र अपने 400 अश्वारोही सैनिकों सहित मारा गया और उसके सभी रथ नदी के किनारे की गीली मिट्टी में धंस गये और उन पर अधिकार कर लिया गया। यद्यपि यह अभिलिखित नहीं है, फिर भी सम्भवतः मेलेगर, अट्टालस और पर्डीकास ने इसके बाद नदी पार की और एण्टीजीनस एवं क्लीट्स के साथ मिल गये।

यद्यपि युद्ध किस स्थल पर हुआ यह निर्धारित नही किया जा सकता है। फिर भी स्टीन की धारणा ठीक हो सकती है कि सिकंदर ने जलालपुर के निकट नदी पार का यह स्थान नूरपुर गाँव से पाँच या छः मील दक्षिण पश्चिम में था, जो कि झेलम नदी के बायें किनारे दक्षिण पश्चिम की ओर मलकवाल और मिआनी गाँव के बीच एक खुले स्थान में स्थित था। नुरपुर के निकट ही स्थित है, सिकंदरपुर, परंतु स्टीन ने उस स्थान नाम का पंजाब में बहुत प्रचलित होने के कारण उसे कोई महत्व नहीं दिया है।

जब भगोडे सैनिकों ने सिकंदर द्वारा एक शक्तिशाली सेना के साथ नदी पार करने और उसके पुत्र के मारे जाने की सूचना पोरस को दी तो पोरस किंकर्तव्यविमूढ हो गया कि क्या करें? क्योंकि इस समय क्रेटरस हरनपुर के निकट से झेलम नदी पार करने का प्रयास कर रहा था। अंत में उसने कुछ हाथियों के साथ एक सेना को क्रेटरस का सामना करने के लिए छोडकर शेष सेना के साथ सिकंदर का सामना करने के लिए आगे बढा और एक स्थान प्राप्त किया जो कि दलदल रहित और समतल था। इसी स्थान से उसने

अपनी सेना का युद्ध विन्यास किया।

प्लूटार्क के अनुसार जब सिकंदर पोरस के पुत्र के साथ युद्ध रत था तब वह अपनी सेना से मात्र बीस फर्लांग आगे था। एरियन के अनुसार इस मुठभेड के कुछ ही बाद उसने पोरस को अपनी सेना का युद्ध वियान्स करते हुए देखा था। सिकंदर ने अश्वरोही सेना को रुकने का आदेश दिया ताकि पैदल सेना भी उसके पास पँहुच सके। वास्तव में पोरस को पुत्र की पराजय और मृत्यु का समाचार मिलने, प्रारम्भिक पराजय से उबरने और अपना मोर्चा परिवर्तित करने के लिए दो-तीन घण्टे का समय मिल गया होगा। जब पैदल सैनिक सिकंदर के पास पँहुचे तब उसने उन्हें रुकने का आदेश दिया और जब वे विश्राम कर रहे थे तब उसने अपनी कार्य योजना निश्चित कर ली।

एरियन लिखता है कि सिकंदर जब अपने शत्रु की सेना की व्यूह रचना का परीक्षण कर रहा था तो उसने देखा कि शत्रु का अग्रभाग हाथियों द्वारा ढका हुआ था। अत: उसने शत्रु पर सामने से आक्रमण करने के सभी विचाार त्याग दिये और संख्या की दृष्टि से श्रेष्ठ अश्वरोही सेना के साथ पोरस के बायें भाग पर तिरक्षे आक्रमण करने का निश्चय किया। सिकंदर ने शीघ्रता के साथ अपनी सेना का विन्यास किया। उसने अपनी सम्पूर्ण अश्वरोही सेना को दाहिने भाग की ओर एकत्रित किया। उसकी सेना के मध्य भाग में पैदल सैनिक थे। सबसे पहले हल्के शस्त्रों से लैस पैदल सैनिक फिर सेल्यूकस के आधीन फिर एंटीजिनीज, क्लेइट्स, मेलेइगर, अट्टालस, और गार्गिआस के आधीन फ्लैंक्स की पाँच बटालियन थी और अंत में हल्के शस्त्रों से लैस पैदल सैनिकों का एक दल सेना का बायाँ पार्श्व निर्मित कर रहा था।

भारतीय सेना सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से निष्क्रिय समूह के रुप में शत्रु की गतिविधियों का अवलोकन करती रही। दूसरी ओर सिकंदर ने आक्रमण कर पहल कर दी और इस प्रकार आक्रमण करने तथा समय पड़ने पर आगे पीछे हटने और युद्ध की अनिश्चित परस्थितियों के अनुरुप अपनी सामरिकी में परिवर्तन करने का लाभ उसे मिला। सिकंदर की योजना पोरस के मध्य भाग जो कि हाथियों द्वारा रक्षित तथा पदाति सैनिकों द्वारा समर्थित है पर आक्रमण न किया जाय। इसलिए उसने भारतीय मध्य भाग के विरुध अपने फैलेन्क्स को निश्चल खडा रखा जिससे कि वे किसी अन्य की सहायता के लिए न जा सके।

सिकंदर ने अपनी तीरन्दाज अश्वारोही टुकडी को आदेश दिया कि वह आगे बढ कर पोरस के बायें पार्श्व पर स्थित घुडसवार टुकडी पर तीरों से आक्रमण करे, जिससे वे अपनी स्थिति से बाहर निकल सके। फिर सिकंदर ने कोयनस को आदेश दिया कि वह अपनी अश्वारोही टुकड़ी के साथ पोरस के दाहिनी ओर बढे और जब देखे कि पोरस की बाँये भाग की अश्वारोही सेना अपनी स्थिति के बाहर निकल चुकी है और दाहिने भाग की अश्वरोही सेना भाग कर बायें भाग की अश्वरोही सेना की सहायता के लिए आ गयी और सिकंदर पोरस की अश्वरोही टुकडी पर सामने से आक्रमण कर रहा हो तो वह तुरन्त तेजी से भाग कर पोरस की अश्वारोही सेना पर बाजू से आक्रमण करे।

इसी बीच भारतीय रथ सेना अपने साथियों की सहायता के लिए बड़ी तेजी से आगे बढ़ी। कर्टिअस लिखता है कि पहले तो कुछ यूनानी पैदल सैनिक इस धावे से कुचल गये, परन्तु उबड़-खाबड़ मैदान फिसलन, दलदल के कारण लगने वाले झटकों से रथरोही सैनिक गिर पडे। कुछ घोड़े भी घबड़ा गये थे और उन्होने रथ को न केवल पानी भरे गड्ढों वरन नदी में ले जाकर डुबो दिया। इस प्रकार भारतीय सेना का यह अंग के रुप में शीघ्र ही इनका अस्तित्व समाप्त हो गया।

सिकंदर तथा कोयनस द्वारा जैसे ही भारतीय अश्वरोही सेना को खदेडा गया, वैसे ही फेलेन्क्स ने आगे बढकर भारतीय सेना के मध्य भाग को निर्मित कर रही हाथियों तथा पदाति सैनिकों पर आक्रमण कर दिया और तब युद्ध का सबसे हिंसक समय शुरु हुआ। पोरस के हाथी आक्रमणकारी यूनानी पदाति सैनिकों के विरुध बढे और विशालकाय पशुओं द्वारा भीषण आक्रमण यूनानी सैनिकों के लिए एक बिल्कुल नया तथ्य था, जिनके विरुध उन्हें युद्ध का कोई अनुभव नहीं था। एरियन लिखता है कि यद्यपि फैलेंक्स की संरचना सघन थी, परन्तु फिर भी हाथी जिधर मुडे भीतर की ओर सैनिकों को कुचलते हुए चले

गये। इस आक्रमण से यूनानी सेना की अग्रिम पंक्ति में भगदड मच गयी, परन्तु शीघ्र ही सिकंदर द्वारा लघुभार दल के प्रयोग के सामरिक परिवर्तन द्वारा स्थिति पर नियंत्रण करने में सफल हुआ।

हाथियों के आक्रमण से यूनानी फैलेन्क्स में उत्पन्न अव्यवस्था को देखकर भारतीय अश्वरोही सेना जो अब तक हाथियों के पीछे थी, ने आगे बढकर सिकंदर की अश्वरोही सेना के बायें भाग पर धावा बोला, किन्तु यूनानी सैनिकों ने जो कि शक्ति और सैन्य अनुशासन दोनो में ही श्रेष्ठ थे, भारतीय सेना पर दूसरी बार विजय प्राप्त की और उन्हें हाथियों के पीछे पुनः खदेड दिया।

अब तक भारतीय घुडसवार सेना लगभग नष्ट हो चुकी थी, किन्तु सर्वाधिक क्षति भारतीय पैदल सेना की हुई। क्योंकि भारतीय पैदल सेना के भारीभरकम धनुष का एक सिरा गीला होने के कारण जमीन पर टिका कर प्रयोग में नहीं लाया जा सके और दूसरी ओर यूनानी सैनिकों के भाले भारतीय सैनिकों की तलवारों की तुलना में कहीं अधिक लम्बे थे। युद्ध के अन्तिम चरण में युद्ध को जारी रखने के उद्देश्य से पोरस अपनी शेष सेना को एकत्रित कर और आस-पास की सेनाओं का समूह बना कर कुछ हाथियों को लेकर आगे बढ़ा, कुछ समय तक लडाई चलती रही। यूनानी सैनिक कभी आगे बढ़ते और हाथियों से घबड़ा कर दूर भगते और जब भारतीय सैनिक बुरी तरह घायल हो चुके थे या थक चुके थे, तब सिकंदर ने उचित समय पर भारतीय सेना को अपने घुडसवारों के साथ घेर लिया। उसने अपने सैन्य दलों के मध्य परस्पर सहयोग एवं संगठन की दृष्टि से यह आदेश दिया कि पैदल सैनिक अपनी दालों के साथ सुसंगठित सैन्य दल के रुप में आगे बढे और अब यूनानी सेना पोरस की शेष बची सेना पर प्रत्येक दिशा से आक्रमण कर रहे थे। यूनानी घुडसवार सेना की घेरा बन्दि में जहाँ कहीं जगह दिखाई दी वहीं से भारतीय सैनिक निकल भागने की कोशिश करने लगे। यह लडाई का आठवाँ घण्टा था। पोरस तब तक लडता रहा जब तक उसका एक भी सहयोगी बचा था। अब तक उसके दो लडके और अधिकांश बहादुर मित्र मारे जा चुके थे। जैसे ही यूनानी सैनिक उसकी ओर बढे उसने हाथी के ऊपर रखे भालों के गट्ठर में भाले फेंकना शुरु कर दिया, परन्तु अब वह शत्रु सैनिकों का एकमात्र लक्ष्य था। उसके आगे पीछे कुल सौ घाव लगे थे, जिसमें दाहिनी भुजा पर लगा घाव काफी घातक था। बहुत अधिक खून बह जाने के कारण वह शिथिल हो गया था। उसके हाथ से भाले फिकने के बजाय, गिर पड़ते थे। अन्त में उसने हाथी को पूर्व दिशा और मोड़ने लगा, इसके बाद वह मूर्छित होकर हौदे में गिर पडा।

इस समय तक क्रेटरस ने नदि पार कर 3000 सैनिकों की फैलेन्क्स बटालियन लेकर आ चुका था। उसके ताजे सैनिकों के दल ने भागते हुए भारतीय सैनिकों का पीछा किया। सिकंदर ने आदेश दिया कि शत्रु को थोड़ी भी छूट न दी जाय। सभी लोगों को मार दिया जाय चाहे वह लड़ रहे हो या नहीं, चाहे निःशस्त्र हों या युद्ध बन्दी के रुप में आत्मसमर्पण कर रहे हो।

पोरस बन्दी बना लिया गया, परन्तु सिकंदर ने उदार नीति के तहत उसे मित्र बना लिया। ट्रोगस लिखता है कि जिस साहस और विश्वास के साथ पोरस उपस्थित हुआ, उससे सिकंदर आश्चर्य चकित हो गया उसने पोरस से पूछा कि वह किस प्रकार के व्यवहार की आशा करता है? अदम्य साहस और निःसंकोच पोरस ने उत्तर दिया 'नृपोचित व्यवहार की। और दूसरी बार पूछे जाने पर पोरस ने निःसंकोच कहा कि उसे जो कहना था, उसने सब एक ही वाक्य में कह दिया। इस निर्भीकतापूर्ण उत्तर से संतुष्ट हो कर होकर सिकंदर ने न केवल उसको उसका राज्य लौटा दिया, वरन उसे आस-पास के राज्यों का स्वामी भी बना दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि सिकंदर ने इस संग्राम की स्मृति में एक मुद्रा का प्रचलन किया, जिस पर पोरस के हाथी का पीछा करते हुए उसको उछलते हुए अश्व पर प्रदर्शित किया है।

पोरस के पराजय के कारण: -

पोरस के पराजय के विषय में निम्न बातें कही जा सकती है।

1. यूनानी मध्य एशिया से आये थे और झेलम के युद्ध से पहले वे कई युद्ध जीत चुके थे। उनके साथ यह विचार जुडा था कि उन्हें पूरे विश्व को विजय करना है। इस पृष्ठभूमि में उनका मनोबल बहुत

B.Sc./B.A

ऊँचा था जो कि पोरस के
2. सिकंदर ने तक्षशिला से
प्रशिक्षण के बारे में सम
कुशल नहीं थी। पोरस
प्राप्त कर सके और ज
पुत्र के नेतृत्व में सिकंद
की सेना का सामना नह
बनी।
3. सिकंदर की घुड़सवार
ओर पोरस के पास भ
कारण सिकंदर धनुर्धर
4. सिकंदर की तुलना में
बदलती हुई परिस्थिति
ही नहीं किसी निश्चि
नहीं कर सका।
5. इतिहासकार स्मिथ क
निपुण नहीं थे और व
नहीं कर सके। क्यों
अंगूठे से दबाकर ती
6. कर्टियस ने लिखा
हाथियों के पैर, सू
महत्वपूर्ण अंग में घ
को कुचलते चले ग
7. भाग्य एवं संयोग ने
सिकंदर द्वारा नदी
ओर मैदान में फिस
गयी।

सिकंदर द्वारा प्रयुक्त

सिकंदर द्वा

1. लक्ष्य का चुनाव अ
लक्ष्य को निर्धारित करे
काफी हद तक अनुसरण
2. मनोबल - मेसेडोनि
उसकी सेना का मनोबल
रहे थे।
3. सुरक्षा - सुरक्षा को
को दो भागों में विभक्त
कुशलतापूर्वक नदी को
गुप्तचरों को जरा भी भ
4. आक्रमणात्मक

ऊँचा था जो कि पोरस के विरुध युद्ध करते समय उनको दृढ इच्छा शक्ति प्रदान करता था।

2. सिकंदर ने तक्षशिला से झेलम की ओर प्रयाण करने से पूर्व ही पोरस की सेना की संख्या, हाथियार, प्रशिक्षण के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त कर ली थी। दूसरी ओर पोरस की गुप्तचर व्यवस्था इतनी कुशल नहीं थी। पोरस के गुप्तचर दस्ते सिकंदर द्वारा नदी पार करने की योजना की जानकारी नहीं प्राप्त कर सके और जब पोरस के यूनानियों द्वारा नदी पार करने की सूचना मिली तब उसने अपने पुत्र के नेतृत्व में सिकंदर का प्रतिरोध करने के लिए जो सेना भेजी, वह इतनी छोटी थी कि सिकंदर की सेना का सामना नहीं कर सकी। पोरस की यह सामरिक भूल उसके पराजय का एक प्रमुख कारण बनी।

3. सिकंदर की घुड़सवार सेना बहुत गतिशील थी तथा वह शत्रु को घेरने की कला में निपुण थी। दूसरी ओर पोरस के पास भी एक संगठित अश्वरोही सेना थी, परन्तु परम्परागत आयुधों के प्रयोग के कारण सिकंदर धनुर्धर अश्वारोही सेना के सम्मुख नहीं टिक पायी।

4. सिकंदर की तुलना में अधिक सेना के बावजूद पोरस ने आरक्षित सेना नहीं रखी थी, परिणामस्वरूप बदलती हुई परिस्थितियों में उसके लिए शत्रु का देर तक सामना करना सम्भव नहीं हो पाया। इतना ही नहीं किसी निश्चित योजना और लक्ष्य के आभाव में वह सुनियोजित दूसरी सेना का गठन नहीं कर सका।

5. इतिहासकार स्मिथ का विचार है कि भारतीय तीरंदाज सिकंदर के तीरंदाजों की तरह कुशल और निपुण नहीं थे और वर्षा के कारण जमीन पर फिसलन होने से वे अपने धनुषों का समुचित उपयोग नहीं कर सके। क्योंकि भारतीय धनुर्धर अपने धनुष को जमीन पर टिका कर फिर उसे बायें पैर के अंगूठे से दबाकर तीर का प्रक्षेपण करते थे।

6. कर्टिअस ने लिखा है कि हाथी पोरस की सेना के प्रमुख अंग थे, परन्तु जब सिकंदर के सैनिकों ने हाथियों के पैर, सूड़ और आँखों और महावातों को अपना निशाना बनाया तो सेना के इस महत्वपूर्ण अंग में भगदड़ मच गयी और ये विशालकाय पशु जिधर भी मुंह उधर अपने ही सैनिकों को कुचलते चले गये। इस प्रकार हाथी भारतीयों की पराजय का मुख्य कारण बने।

7. भाग्य एवं संयोग ने भी पोरस का साथ नहीं दिया, क्योंकि युद्ध पूर्व हुई वर्षा ने जहाँ एक ओर सिकंदर द्वारा नदी पार करने की गतिविधियों के लिए छिपाव का अवसर प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर मैदान में फिसलन और कीचड़ के कारण भारतीय धनुर्धर तथा रथ सेना अनुपयोगी सिद्ध हो गयी।

सिकंदर द्वारा प्रयुक्त युद्ध के सिद्धान्त: -

सिकंदर द्वारा प्रयुक्त किये गये आधुनिक युद्ध के सिद्धान्त निम्न प्रकार है -

1. लक्ष्य का चुनाव और निर्वाह - किसी भी युद्ध का प्रारम्भिक सिद्धान्त होता है कि सेनानायक युद्ध के लक्ष्य को निर्धारित करे और उसकी प्राप्ती के लिए अंत तक युद्ध करता रहे। सिकंदर ने इस सिद्धान्त का काफी हद तक अनुसरण किया।

2. मनोबल - मेसेडोनिया से झेलम तक सिकंदर की सेना लगातार विजय प्राप्त करती हुई पहुँची थी। अत: उसकी सेना का मनोबल ऊचाँ था और वे प्रत्येक कठिनाई का बड़े ही धैर्य और साहस के साथ सामना कर रहे थे।

3. सुरक्षा - सुरक्षा की दृष्टि से सिकंदर द्वारा अपनी गयी युद्ध नीति बहुत ही महत्वपूर्ण थी। उसने सेना को दो भागों में विभक्त कर , एक भाग को पड़ाव में छोड़ दिया और दूसरे भाग का नेतृत्व स्वयं करता हुआ कुशलतापूर्वक नदी को पार किया। सिकंदर की सम्पूर्ण व्यवस्था इतनी सुगठित और गुप्त थी कि पोरस के गुप्तचरों को जरा भी भनक नहीं लगी। जबकि सिकंदर ने उसकी सेना के विरुध पूरी जानकारी प्राप्त की थी।

4. आक्रमणात्मक कार्यवाही -

युद्ध के सिद्धान्त का भी सिकंदर ने सफलता पूर्वक प्रयोग किया। तक्षशिला से चलकर सिकंदर ने झेलम के तट पर पोरस के पड़ाव के सामने अपना शिविर बनाया और झेलम नदी पार कर पोरस पर आक्रमण की पहल कर विजय प्राप्त की, जबकि पोरस की सेना सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से निष्क्रिय समूह के रुप में यूनानी सेना का अवलोकन करती रही और नदी पार कर यूनानी सेना पर आक्रमण का कोई प्रयास नही किया।

5. गतिशीलता और लचक - यूनानी अश्वारोही सेना और फेलेन्क्स छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त थे, जिसके कारण उसकी सेना में गतिशीलता और लचक अधिक थी।इसके साथ ही उसके सेना के हाइपास्पिट्स और एग्रीएनियन हल्के शस्त्रों से लैस थे, जिसके कारण उनका संचारण तीव्र गति से होता था। उनके सैनिकों के कवच भी हल्के थे।

6.आश्चर्य - शत्रु पर ऐसे समय और स्थान पर आक्रमण करना जिसकी कल्पना उसने योजना में न की हो तो वह आश्चर्य चकित हो जाता है। सिकंदर ने पोरस की सेना को स्थानिक, सामरिक और तकनीकी तीनो प्रकार से आश्चर्य चकित कर दिया।

युद्ध के सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य सिद्धान्तों का प्रयोग भी स्पष्ट किया जा सकता है। सिकंदर की अश्वरोही सेना और पैदल सेना के बीच उत्कृष्ट सहयोग देखने को मिलता है। इसके साथ ही सिकंदर के सैनिकों, अधिकारियों, गुप्तचरों और संचार व्यवस्था बनाये रखने वाले दलों के बीच समन्वय सिकंदर की उच्च प्रशासनिक प्रतिभा का प्रतीक था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सिकंदर एक वीर, साहसी, चतुर, योग्य और दुरदर्शी सेनानायक था। अपनी साहसपूर्ण योजनाओं और उनका कुशलतापूर्वक संचालन करके सदैव विजयी होता रहा, जिससे उसके सैनिकों का मनोबल बहुत ऊँचा रहता था तथा वे सिकंदर के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास करते थे। यही उसकी सफलता का मूल मंत्र था।

प्रश्न.5. कौटिल्य द्वारा वर्णित दुर्गीकरण की अवधारणा की व्याख्या कीजिये। (2003, 06)

उत्तर. दुर्ग: -

सभी अर्थशास्त्रों और नीति-शास्त्रों में दुर्ग का वर्णन किया गया है परन्तु आचार्य कौटिल्य की किले-बंदी की अवधारण सबसे विलक्षण है। आचार्य कौटिल्य ने राज्य के सप्तांगों में दुर्ग को भी स्थान प्रदान किया है। इसमें कोई संदेह नही है कि यह सप्तांगो का सबसे महत्वपूर्ण अंग नही है, फिर भी यह सेना, मित्र तथा कोष की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण था।

दुर्ग वही स्थान होता था, जहाँ से एक राजा क्रूर युद्ध, अपने समर्थक राज्यों पर नियंत्रण, युद्धोपरांत सेना का पुर्नगठन, मित्रों का स्वागत और शत्रु को बाहर निकालने सम्बंधी कार्यवाहियों का सफलता पूर्वक संचालन कर सकता है। दुर्ग के आभाव में कोष पर शत्रु का अधिकार हो जाता है। राजा और राज्य की रक्षा एवं अस्तित्व की दृष्टि से दुर्ग की महत्ता को भी सभी राजनीतिक विचारों ने स्वीकार किया है। मनुस्मृति और युक्ति कल्पतरु में लिखा है कि दुर्ग के पर कोटे पर तैनात एक धनुर्धर युद्ध में शत्रु में शत्रु के सैकड़ों सैनिकों के बराबर होता है।

किले बन्दी का महत्व पर अपनी आरम्भिक टिप्पणी के उपरान्त कौटिल्य ने दुर्गों का वर्गीकरण उनकी अवस्थिति के आधार पर किया। उनके अनुसार दुर्गों को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. औदक (जल दुर्ग) 2. पर्वत (पहाड़ि दुर्ग) 3. धान्वन (मरुस्थलीय दुर्ग)
2. वन दुर्ग (जंगल दुर्ग)

चारों ओर पानी से घिरा टापू के समान, गहरे तालाबों से आवृत्त स्थल प्रदेश 'औदक दुर्ग' कहलाता है। बड़ी-बड़ी चट्टानों अथवा पर्वत की कन्दराओं के रुप में निर्मित दुर्ग 'पर्वत दुर्ग' कहलाता है। जल तथा घास आदि रहित अथवा सर्वदा ऊसर भूमि में निर्मित दुर्ग 'धान्वन दुर्ग' कहलाता है। इसी प्रकार चारों ओर

से दलदल से घिरा हुआ अथवा सघन झाड़ियों से परिवृत दुर्ग 'वन दुर्ग' कहलाता है।

उपरोक्त विभिन्न प्रकार के दुर्गों में आचार्य कौटिल्य ने पर्वत दुर्ग को सर्वाधिक महत्व दिया है क्योंकि वह औदक, मैदानों में स्थित कृत्रिम दुर्ग और वन दुर्ग की तुलना में अपराजेय एवं सुरक्षित होता है। इसके साथ ही साथ पर्वत दुर्ग आक्रमणकारी सेना के विरुध आक्रमणकारी सेना के विरुध आक्रमणात्मक कार्यवाही जैसे शत्रु पर पत्थर, गर्म तेल, क्षेपास्त्र, पेड़ तथा अन्य वस्तुओं को फेकने की दृष्टि से एक ऊँचा प्लेटफार्म उपलब्ध कराता है और यदि किले की रक्षा में संलग्न सेना की टुकड़ी पराजित हो जाती है तो दूसरी टुकड़ी बिना शर्त के पलायन कर सकती है।

विभिन्न प्रकार के दुर्गों की तुलनात्मक महत्व को स्पष्ट करने के लिए आचार्य कौटिल्य राजा को सुझाव देता है कि उसे साम्राज्य की सीमाओं की चारों दिशाओं में युद्धोचित प्राकृतिक दुर्गों का निर्माण कराये। वास्तुविद्या के विद्वान जिस प्रदेश को श्रेष्ठ बताएं, वहीं पर नगर बसाना चाहिये अथवा किसी नदी के संगम, बड़े-बड़े तालाबों के किनारे या कमलयुक्त जलाशयों के तट पर किले बन्द नगर बसाये जा सकते हैं।

नगर के चारों ओर एक-एक दण्ड की दूरी पर तीन खाइयाँ खोदी जायें। ये क्रमशः 14 12 और 10 दण्ड़ चौड़ी होनी चाहिये और उतनी ही या उससे आधी गहरी होनी चाहिए। खाई की दीवारें तथा तलहटी पत्थरों से मजबूत तथा चौरस बनी होनी चाहिये। इनमें जल भरने तथा निकलने का मार्ग होना चाहिए। इन खाइयों में कमल के फूल, घड़ियाल तथा जन्तु होने चाहिए। खाई से चार दण्ड की दूरी पर छः दण्ड ऊँची तथा ऊपर की चौड़ाई से दो गुनी नींव का एक प्रकाट बनाया जाए। इसके निर्माण में खाईयों से निकली हुई मिट्टी को काम में लाया जाय। इसके चारों ओर काटेंदार तथा विषैली झाड़ियाँ होनी चाहिए। प्राकार के ऊपर बारह हाथ से लेकर चौदह, सोलह, अट्ठारह, सम संख्याओं अथवा पंद्रह, सत्रह आदि विसम संख्याओं में अथवा अधिक से अधिक चौबीस हाथ ऊँची दीवार होनी चाहिए। यह दीवार चौड़ाई से दो गुनी ऊँची होनी चाहिए तथा ऊपर का हिस्सा इतना चौड़ा हो कि उस पर एक रथ दौड़ सके। प्राकार के आगे तीस-तीस दण्ड की दूरी पर ऐसी अट्टालिकाएं बनाएं, जिनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई प्राकार के बराबर हो। ऊँचाई के अनुपात से उसमें सीढियाँ भी हों। दो अट्टालिकाओं के बीच चौड़ाई से ड़ेढ गुनी लम्बी प्रतोली नामक एक दो मंजिल इमारत बनायी जाए। अट्टालिका और प्रतोलि के बीच इन्द्र कोष नामक एक विशिष्ठ स्थान बनाया जाये जिसमें तीन धनुर्धारी बैठ सकें। उसके आगे छिद्र युक्त एक ऐसा तख्ता हो जिसमें अन्दर से बाहर देख सके और निशाना लगा सकें। परन्तु बाहर से अन्दर न देखा जा सके। प्राकार के साथ ही एक ऐसा गुप्त मार्ग हो जो अट्टालिका, प्रातोली और इन्द्र कोष को जोड़ता हो। प्राकार की भूमि में खूटें, त्रिशूल, गड्ढे, कीले, जहरीले पानी के घड़े आदि बना देना चाहिए, जिससे शत्रु के लिए दुर्ग तक पहुँचना कठिन हो जाये।

दुर्ग का द्वार बनाने के लिए प्राकार के दोनों भागों में डेढ दण्ड लम्बा और चौड़ा एक चबूतरा बनाया जाए। उसके ऊपर प्रतोली के समान पन्द्रह हाथ से लेकर अट्ठारह हाथ ऊँचे खम्भे बना कर दुर्ग का द्वार बनाया जाय। खम्भों की मोटाई, ऊँचाई का छठा हिस्सा होना चाहिए। मोटाई से दुगना भाग भूमि में गाड़ देना चाहिए। द्वार के निर्माण के लिए पाँच दण्ड से लेकर आठ दण्ड की परिधि होनी चाहिये। द्वार का ऊपरी बुर्ज दो हाथ लम्बा होना चाहिए। फाटक के बीच पाँच हाथ का एक छोटा दरवाजा होना चाहिए। पूरा द्वार इतना बड़ा हो जिसमें चार हाथि एक साथ प्रवेश कर सकें। इसके साथ ही आचार्य कौटिल्य ने दुर्ग में गलियारों और अन्य भवनों के निर्माण का विस्तार से वर्णन किया है और साथ ही विभिन्न प्रकार की सामग्रियों के संग्रह का सुझाव दिया है जो कि वर्षों तक उपयोग में लाने के लिए पर्याप्त हों। नई सामग्री की अवाक होने पर पुरानी सामग्री को बदल देना चाहिए।

प्रश्न.6. कौटिल्य के सैन्य दर्शन की अवधारणा का वर्णन कीजिये। **(2011)**

उत्तर सैन्य संगठनः -

कौटिल्य सदैव स्थाई सेना के पक्ष में थे और उनका मानना था कि सेना को वेतन और युद्ध सम्बन्धी सभी साजो सामान की आपूर्ति राज्य द्वारा की जानी चाहिए जिसमें वंशानुगत, स्थायी एवं वश में रहने वाले सैनिक हों, जिनके स्त्री-पुत्र राजवृति को पाकर पूरी तरह से संतुष्ट हों, युद्ध के समय जिनको आवश्यक साजो-सामान से लैस किया जा सके, जो कभी पराजित न होता हो, दुख सहने वाला हो, युद्ध कला का ज्ञाता और विभिन्न प्रकार के आयुधों के प्रयोग में दक्ष, राजा के लाभ-हानि का हिस्सेदार हो और उसमें क्षत्रियों की अधिकता हो। रथ, अश्व, गज और पैदल चार अंगों की परम्परागत सेना के अतिरिक्त आचार्य कौटिल्य ने सेना को छः वर्गों में विभक्त किया है, जो सम्भवतः सेना के संग्रह के क्षेत्रों या स्रोतों पर आधारित है। इस धारणा के अनुसार सेना का निर्माण छः अवयवों से किया जाता था। 1. मौलबल - वंशानुगत स्थायी सेना 2. भृत बल - वेतन भोगी सेना 3.श्रेणी बल - यह व्यपारियों की सेना थी या वह सेना थी, जिसमें सैनिक अल्पकाल के लिए धन प्राप्ति हेतु सैन्य सेवा स्वीकार करता था। 4.मित्र बल - मित्र राजा की सेना 5.अमित्र बल - शत्रु राजा की सेना 6.अटवी बल - जंगल में निवास करने वाली जातियों से बनी सेना।

आचार्य कौटिल्य ने सेना के संगठन को छः भागों में विभक्त किया हैं - 1.पैदल 2.रथ 3.अयवराही 4.गज सेना 5.नौ सेना 6.आपूर्ति विभाग।

पैदल सेना - आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में गज सेना को अश्वरोही और पैदल सेना की तुलना में अधिक महत्व दिया है। पैदल सेना के कार्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि इनका प्रमुख कार्य सेना के सभी अंगों के शस्त्रों को ढोना, पानी लाना और खुदाई करना होता है। इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने, पैदल सेना को मजबूत और महत्वपूर्ण अंग के रुप में स्वीकार नही किया। परन्तु युद्ध में विजय पाने के लिए पैदल सेना की महत्वपूर्ण भूमिका थी। बड़े-बड़े पत्थरों और टुकड़ों, विरल रुप से लगे हुए वृक्षों से युक्त मैदान पैदल सेना के लिए उत्तम होता था। युद्ध में व्यूह रचना में कवचधारी पैदल सैनिकों को अग्रभाग में और धनुर्धारी सैनिकों को पीछे के दोनों भागों में खड़ा किया जाना चाहिये।

रथ सेना - आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में रथाध्यक्ष का वर्णन किया है, जिस पर रथों का उत्तरदायित्व होता था। उसको चाहिये कि वह नये-नये रथों का निर्माण कराये और जीर्ण हो जाने पर उनकी मरम्मत करवाये। कौटिल्य ने छः प्रकार के रथों का वर्णन किया है, जिसमें तीन प्रकार के रथ प्रयोग में लाए जाते थे - 1.शिक्षा के समय 2. शत्रु की ओर प्रयाण के समय 3. युद्ध के समय।

अश्वरोही सेना - अश्वरोही सेना का अध्यक्ष अश्वाध्यक्ष होता था। चूँकि सैनिक दृष्टि से घोड़े महत्वपूर्ण होते थे। अतः उनकी खरीद, पालन-पोषण, रख-रखाव, नस्ल की उन्नति आदि पर व्यापक विचार व्यक्त किया है। गंधार, कम्बोज और अरब देशों के घोड़े अच्छे होते है। अतः घोड़ों के खरीद के समय घोड़ों को पहचानने वाला, पशु चिकित्सक और वित्त विभाग के प्रतिनिधियों का पूरा दल जाना चाहिए।

कौटिल्य के अनुसार शत्रु के विरुध दौड़ने, घेरने, दूर हटने, पीछा करने, शत्रु के पड़ाव को नष्ट करने, सैनिकों को एकत्रित करने, मोड़ने, घेरे बन्द, छिट-पुट कार्यवाही करने, सामने, पार्श्व और पृष्ठ भाग पर आक्रमण, बिखरे हुए सैनिकों की रक्षा, शत्रु पर आक्रमण की पहल और भागती हुई सेना का पीछा करना अश्वरोही सेना के प्रमुख कार्य है।

गज सेना - आचार्य कौटिल्य ने लिखा है कि शत्रु सेना का विनाश हाथियों पर निर्भर था। कौटिल्य के अनुसार गज सेना के प्रमुख कार्य निम्न है - 1.प्रयाण करती सेना के सेना-मुख दल के रुप में 2. मार्ग, पड़ाव और नदियों पर घाट बनाने में 3.सेना प्रयाण मार्ग के अवरोधों जैसे - वृक्षों और झाड़ियों को साफ करना 4.दुर्ग की दीवारों, फाटकों और अट्टालिकाओं को ध्वस्त करना और तितर-बितर करना। जिस क्षेत्र में जल का आभाव हो, वहाँ गज सेना का प्रयोग नहीं किया जाता था।

नौ सेना - आचार्य कौटिल्य ने नौ विभाग के अध्यक्ष 'नवाध्यक्ष' के कार्यों का वर्णन किया है। शत्रु की नावें

जब प्रादेशिक जल सीमा का उल्लंघन करें या जलयान, जब बन्दरगाह, नगर कानूनों और प्रथाओं का अतिक्रमण करें तो उन्हे नष्ट कर देना चाहिये।

यातायात तथा आपूर्ति विभाग: -

सेना की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना और सेना के लिए प्रबन्धों का दायित्व पशु-विभाग का अध्यक्ष और आयुधागाराध्यक्ष का होता था। युद्ध संगीतज्ञ भी इसी विभाग के आधीन होते थे। इसी विभाग के आधीन घाड़ों के सईस, चिकित्सक और ज्योतिषी भी होते थे।

प्रश्न.7. कौटिल्य द्वारा वर्णित गुप्तचर व्यवस्था की विवेचना कीजिये। (2005, 12)

उत्तर . गुप्तचर विभाग: -

सेना को सफलता शत्रु की शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान कर उस पर प्रबल आघात करने से मिलती है। शत्रु की शक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त करने के माध्यम गुप्तचर थे। मौर्य काल, जिसका प्रतिनिधित्व अर्थशास्त्र करता है, में गुप्तचर विभाग बहुत उन्नत था। अर्थशास्त्र में इस विभाग का विस्तार से वर्णन किया गया है। गुप्तचर, आमात्यों और राजकर्मचारियों पर निगरानी रखने और पौर तथा जनपद के लोगों के विचारों का पता लगाने के लिए नियुक्त किये जाते थे। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि नागरिक और सैनिकों दोनो प्रकार की जासूसी प्रचलन में थी।

गुप्तचर विदेशों में नियुक्त किये जाते थे, पड़ोसी देश, शत्रु देश तथा अन्य विदेशी राष्ट्रों की गति, नीति, विचार, भाव आदि का पता लगने के लिए गुप्तचर सदा प्रयत्नशील रहते थे। गुप्तचर विभिन्न छद्मवेश धारण कर काम करते थे।

1. कापटिक छात्र - विद्यार्थी के वेश में
2. उदास्थित - सन्यासी व वैरागी के छद्मवेश में प्रज्ञा और सदाचार से युक्त गुप्तचर
3. गृहपतिका - किसान के वेश में
4. तापस - मुण्ड या जटाधारी तपस्वी साधु के वेश में
5. वैदेहक - व्यापारी

इसके अलावा कुब्ज, किरात, मूक, बधिर, जड़ आदि होने का बहाना कर बहुत से गुप्तचर अपना कार्य करते थे। इस विभाग में विधवा ब्राह्मणी और वैश्यायें भी नियुक्त होती थीं।

ये सभी गुप्तचर दो वर्गों में विभक्त होते थे, प्रथम वे जो एक स्थान पर रह कर कार्य करते थे, संस्था कहलाते थे और दूसरे वे जो घूम-घूम कर कार्य करते थे, संस्था कहलाते थे। परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचारों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। अत: विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके अधीन मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठ्ठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट, सभी स्थानों पर अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे। साम्राज्य के अन्तर्गत किलों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों और राज्य की सीमा पर चरवाहों को गुप्तचर के रुप में नियुक्त करना चाहिये। अत: हम कह सकते है कि आचार्य कौटिल्य के काल में नागरिक, सैनिक और राजनयिक तीनों ही स्तरों पर गुप्तचरी का प्रचलन था।

प्रश्न.8. कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त की विवेचना कीजिये तथा अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों की अवधारणा का वर्णन कीजिए। (2008, 11)

उत्तर . मण्डल सिद्धान्त: -

कौटिल्य ने अन्तरराज्यीय सम्बन्धों के निर्धारण हेतु मंडल सिद्धांत का प्रतिपादन अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में किया है। इस सिद्धांत के अनुरुप राजा का लक्ष्य राज्य की सुरक्षा के साथ उसका विस्तार

थी है। फलतः कौटिल्य एक आक्रामक और विस्तारवादी विदेशनीति का प्रतिपादन करता है।

कौटिल्य, मण्डल सिद्धांत का केन्द्र विजिगीषु (राजा) को मानता है। जो राजा आत्मसम्पन्न द्रव्यप्रकृति सम्पन्न और नीति का आश्रय लेने वाला होता है उसे विजिगीषु (राजा) की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार विजिगिषु का आशय उस शासक से है, जो साम्राज्य विस्तार की इच्छा और चक्रवर्ती सम्राट की महत्वकांक्षा की प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील हो ऐसे राजा को मण्डल का केन्द्र मानकर आचार्य कौटिल्य ने विजिगिषु के अग्रवर्ती और पृष्ठवर्ती शासकों के साथ सम्बन्धों के निर्धारण की परिकल्पना प्रस्तुत की है। इस परिकल्पना का मूल्य इस तथ्य में निहित है कि विजिगिषु (राजा) के चारों ओर के सीमावर्ती राजा अरि कहलाते हैं और अरि प्रकृति राजाओं की सीमा से लगे राजा मित्र कहलाते है।

विजिगीषु, मित्र और मित्र-मित्र राज्य की तीन प्रकृति है। इन तीनों लोगों की अलग-अलग आमात्य, जनपद दुर्ग, कोष और सेना, पाँच प्रकृतियों और राजा सहित कुलयोग अठारह प्रकृतियों का एक मण्डल होता है। अरि, मध्यम और उदासीन आदि के मंडलों का यही क्रम आवर्ती होगा। इस प्रकार चार मण्डलों में बारह राज प्रकृतियां और साठ अन्य प्रकृतियां बहत्तर प्रवतियां कही जाती है। कौटिल्य के अनुसार जिस राज्य की सीमा विजिगीषु की सीमा से मिलती है वह अरि (शत्रु) होगा। इसी प्रकार अरि से जिस राज्य की सीमा मिलेगी, वह अरि का अरि (शत्रु) होगा। अतः विजिगीषु का मित्र होगा। इस प्रकार मण्डल में मित्र, मित्रमित्र, आक्रन्दा तथा आक्रान्दासार विजिगीषु के मित्र होंगे तथा अरि, अरिमित्र, अरिमित्रामित्र, पार्ष्णिग्राह तथा पार्ष्णिग्राहासार विजिगीषु के शत्रु होंगे।

आचार्य कौटिल्य ने मण्डल में स्थित बारह राजाओं या शासकों को दृष्टि पथ पर रखते हुए अपनी विदेशनीति को निर्धारित करने और क्रियान्वित करने के उपायों (तत्वों) का उल्लेख किया है। प्राचीन आचार्यों से सहमति व्यक्त करते हुए विदेशनीति में षटगुणों के सिद्धांत का ही प्रतिपादन किया है। विदेशनीति के निर्धारण की ये विधाएं क्रमशः 1.सन्धि 2.विग्रह 3. आसन 4.यान 5.संश्रय 6.द्वैधीभाव के नाम से प्रसिद्ध है।

(क) 1. दो राज्यों (राजाओं) का कुछ शर्तों पर मेल (संधि)
2. शत्रु का कोई अपकार करना (विग्रह)
3. उपेक्षा करना (आसन)
4. चढाई करना (यान)
5. आत्म समर्पण करना (संश्रय)
6. सन्धि विग्रह दोनों से काम लेना (द्वैधी भाव) कही जाती है।

(ख) 1. शत्रु की तुलना में दुर्बल तो सन्धि
2. शत्रु की तुलना में बलवान तो विग्रह
3. शत्रु की तुलना में समान बल तो आसन
4. शत्रु की तुलना में सर्वशक्ति सम्पन्न तो यान
5. शत्रु की तुलना में आसक्त तो संश्रय
6. यदि शत्रु से सहायता की अपेक्षा हो तो द्वैधी भाव को अपनाना चाहिए।

उपरोक्त नीतियों में से किस नीति का क्रियान्वयन किया जाना चाहिये, इस पर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आचार्य कौटिल्य ने लिखा है कि राजा को उसी नीति का पालन करना चाहिए, जिसमें अपनी प्रगति और विकास तथा शत्रु की अवनति एवं विनाश हो सके। जिस नीति से अपनी क्षति और शत्रु की कोइ क्षति न हो उसका कदापि पालन नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार तुलनात्मक रुप से लाभ और हानि का अनुपात और दीर्घ कालिक हित को ध्यान में रखते हुए ही अपनी नीति का क्रियान्वयन करना चाहिए।

प्रश्न.9. मौर्य सैन्य पद्धति के प्रमुख तत्वों को लिखिए। (2003)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. मौर्यकाल में सैन्य संगठन की अवधारणा का विस्तार से वर्णन कीजिए। (2006)

प्रश्न. मेगस्थनीज द्वारा वर्णित मौर्य सैन्य व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

प्रश्न. भारतीय सैन्य पद्धति में गुप्तकाल एक नया मोड़ था। व्याख्या कीजिए। (2009)

प्रश्न. मौर्यकाल में सैन्य संगठन की अवधारणा का विस्तार से वर्णन कीजिए। (2011)

प्रश्न. मौर्य सैन्य व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (2013)

उत्तर. मौर्य की सैन्य व्यवस्था अत्यन्त सुसंगठित और सुव्यवस्थित थी। चन्द्रगुप्त की सेना जैसा कि डियोडोरस ने अपनी पुस्तक यूनिवर्सल हिस्ट्री में लिखा है कि एक नागरिक सेना न हो कर एक स्थायी सेना थी, जिसे राज्य की ओर से आवश्यक अस्त्र-शस्त्र, घोड़े, हाथी एवं खाद्य पदार्थ इत्यादि दिये जाते थे। यूनानी लेखकों के अनुसार चन्द्रगुप्त के समय सेना में 6 लाख पैदल, 30 हजार अश्वारोही और 9 हजार हाथी थे, परन्तु रथों की निश्चित संख्या का उल्लेख नहीं किया है, फिर भी ऐसा विश्वास किया जाता है कि नन्दों के समान उसके पास आठ हजार रथ रहे होंगे।

चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना के बारे में कुछ मतभेद है, किन्तु जैसा एरियन ने लिखा है प्रत्येक रथ पर चालक के अतिरिक्त दो योद्धा और हाथी पर एक चालक के अतिरिक्त तीन धनुर्धारी होते थे। इस विवरण को यदि प्लूटार्क चन्द्रगुप्त द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना के आंकड़ों के साथ सम्मिलित करके देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि सेना में पैदल 6,00,000, अश्वारोही 30,000 हाथी पर (1 चालक + 3 धनुर्धारी) = $4 \times 9000 = 36,000$, रथ पर (1 चालक + 2 योद्धा) = $3 \times 8000 = 24,000$

अतः कुल सेना की संख्या 6,90,000 की रही होगी।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि एक, चन्द्रगुप्त के पास विशाल सेना थी। दूसरे, सेना का प्रबन्धन पूर्णतया राजकोष से होता था। तीसरे, अनुचरों की भर्ती जहाँ अपने तथा सेना के जानवरों की देखभाल करने हेतु भी की जाती थी।

मेगस्थनीज चंद्रगुप्त मौर्य की सेना के संगठन के विषय में लिखता है कि सेना एक युद्ध परिषद के आधीन थी जिसमें तीन सदस्य होते थे। छः विभिन्न स्वतंत्र विभाग थे। प्रत्येक विभाग के पाँच-पाँच सदस्य इस युद्ध परिषद में होते थे। ये छः उपविभाग थे - पैदल, अश्वारोही, हाथी, रथ, नौ सेना एवं आपूर्ति।

ग्रीक लेखकों के द्वारा सेना के विभिन्न अंगों की भूमिका, महत्व आदि के विषय में यत्र-तत्र उल्लेख किया है - जैसा कि एरियन लिखता है कि पदाति सेना जब युद्ध के लिए सुसज्जित हो जाती थी, तब वे एक बहुत बड़ा धनुष लेकर चलते थे, जिसका आकार लम्बाई में सैनिक के बराबर होता था। इस धनुष को भूमि में टेककर बायें पैर से इसे दबाते थे और बाण को पीछे खींचकर तीन गज लम्बा वृहदाकार बाण शत्रु की ओर फेंकते थे। भारतीय धनुर्धर द्वारा निक्षिप्त इस प्रचंड बाण का प्रतिरोध कोई भी वस्तु नहीं कर सकती थी। न धातु निर्मित कवच।

इसी प्रकार मेगस्थनीज लिखता है कि अश्वारोही सेना का एक स्वतंत्र विभाग था। राज्य अधिकृत अच्छे नस्ल के अश्वों को अस्तबलों में शिक्षित घुड़सवारों और सईसों की देख-रेख में रखा जाता था। ऐसे ही शिक्षित अश्वारोही सरपट भागते हुए घोड़ों को उछल कर रोक लेते थे। घुड़सवार दो भालों से लैस रहते थे और उनके पास जो ढालें होती थी वे पैदल सैनिकों के तुलना में छोटी होती थी। घोड़े की पीठ पर वे कोई जीन नहीं डालते थे, घोड़े के मुँह में चमड़े की बनी एक प्रकार की लगाम इस्तेमाल करते थे।

गज सेना मौर्य सेना की प्रमुख अंग थी। अपना साम्राज्य फैलाने के काम में गज की सफलता का एक प्रधान कारण था, पर्याप्त संख्या में हाथी प्राप्त करने की सुविधा। ये हाथी कलिंग और अंग देश में बहुत होते थे। मेगस्थनीज ने विस्तार से बताया है कि ये हाथी कैसे पकड़े जाते थे? इनकी आँखों की तकलीफ के लिए दूध और घाव भरने के लिए सुअर की चर्बी प्रयोग में लायी जाती थी। हाथियों का देखभाल के लिए

कमेटी बनी हुई थी। एक हाथी पर चार आदमी बैठते थे, जिसमें तीन धनुर्धारी होते थे और एक महावत।

युद्ध में हाथियों का महत्व कितना था, यह सिकंदर के शब्दों से स्पष्ट होता है कि जब वह झेलम नदी पार कर रहा था 'केवल उन हाथियों के कारण ही घोड़ों को अन्य तटों पर ले जाना सम्भव नहीं हो रहा है, अन्यथा बाकी सेना बिना किसी कठिनाई के नदी पार कर सकती है।'

मेगस्थनीज ने रथ सेना के बारे में यों लिखा है कि सेना के कूच करते समय घोड़े रथों में जोते जाते हैं और घोड़ों को यूँ ही बल्गा थाम कर युद्ध क्षेत्र तक लाया जाता है जिससे रथ खींचने से उनके पैर थक न जायें या सूज न जायें। रथ चालक के अतिरिक्त दो योद्धा रथ पर बैठते थे। रथों में एक खराबी यह थी कि जल मग्न, कीचड़ वाली तथा रेतीली भूमि पर अपने वजन से उनके पहिये जमीन में धंस जाते थे और रथारोही योद्धा विपत्ति में फँस जाता था। झेलम के संग्राम में ऐसा ही हुआ, जब रात में वर्षा के कारण जमीन फिसलनदार हो गयी थी और घोड़ों ने घबरा कर रथों को या तो कीचड़ या तो नदी में ले जाकर फेंक दिया था।

नौ सेना: -

नौ सेना को सेना के एक अंग के रुप में संगठित करने का श्रेय चन्द्रगुप्त को जाता है। चन्द्रगुप्त के जहाजी बेड़े में एरियन के अनुसार कुल 800 जहाज थे, जबकि कर्टियस और डियोडोरस कहना है कि इस जहाजी बेड़े में कुल जहाजों की संख्या 2000 थी। टालमी के विवरण को अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

मेगस्थनीज का कहना है कि जहाज बनाने वालों को राज्य की ओर से वेतन मिलता था। स्ट्रैबो का कहना है कि राज्य की तरफ से यात्रा और व्यापार के लिए जहाज एवं नौकाएं भाड़े के लिए दी जाती थीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि राज्य भर के जलयान राज्याधीन सम्पत्ति थे। जहाज और नौकाओं की सुरक्षा की ओर राज्य बहुत ध्यान देता था। सिकंदर ने भारतीय भूमि के दौरान सिन्ध और झेलम नदियों को नौकाओं की सहायता से ही पार किया करता था। ग्रीक लेखकों के विवरण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में नौकायानों की बड़ी उन्नति हो चुकी थी, परन्तु नौका युद्ध का विवरण हमें कहीं मिलता नहीं है।

यातायात तथा युद्ध सामग्री विभाग: -

चंद्रगुप्त की सेना के छः उप विभागों में कमिसैरियट का विभाग भी बड़ा सुव्यवस्थित और सुनियंत्रित था। सेना की सब आवश्यकताओं को पूरा करना, उसके लिए सब प्रकार का प्रबन्ध करना दण्डपाल का काम था। सांग्रमिक सामान ढोने वाली बैलगाड़ियों के अध्यक्ष के साथ इन्हें योग सूत्र बनाये रखना पड़ता था। शायद इसी के अध्यक्ष का नाम गाविकाध्यक्ष था। सेना के लिए अनाजों का बन्दोबस्त करना भी इन्हीं के सुपुर्द था। वृहद्-युद्ध-वाद्य यन्त्र के वाहक और वादक भी इसी विभाग के अन्तर्गत होते थे।

गुप्तचर व्यवस्था: -

मेगस्थनीज ने एक छठी जाति का भी उल्लेख किया है, जो गुप्तचरों की थी। गुप्तचर राजा द्वारा निर्धारित क्षेत्रों में जाकर सभी बातों की जानकारी देते थे। जिससे किसी भी प्रकार का आश्चर्यपूर्ण आक्रमण या स्वतः जनता द्वारा विद्रोह की खबर राजा को पहले ही मिल जाया करती थी। राज्य की सुरक्षा हेतु गुप्तचर विभाग पूर्णरुप से उत्तरदायी होता था। ये राज्य के प्रत्येक कार्य का निरीक्षण करते थे और उसकी सूचना राजा को देते थे, जो सबसे अधिक योग्य और विश्वास पात्र होते थे। वे राजधानी और राजशिविर के निरिक्षण के लिए नियुक्त किये जाते थे। एरियन ने इन निरिक्षकों का सुपरिन्टेंडेंट कहा है। यह निश्चित रुप से नही कहा जा सकता है कि ये किस जाति के होते थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें ब्राहम्ण, क्षत्रिय और वैश्य शामिल थे।

Unit II

प्रश्न.1. गुप्तकाल के दौरान यु
अश्वारोही सेना के उत्थान के का

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. गुप्तकाल के युद्ध कल
प्रश्न. गुप्तकालीन सैन्य व्यव
उत्तर. सैन्य व्यवस्था: -

गुप्त सम्राट
मौर्यों के समान थी परन्तु उसके संगठ
अदा करने के बदले विजित क्षेत्रों को
व्यवस्था का शुभारम्भ किया। तीसरी
प्रवृत्तियों और क्षेत्रीय आत्मवाद के प

मौर्य साम्राज्य की केन्द्री
जब साम्राज्य का निर्माण हुआ तो उ
देते थे और शाही सेना के लिए सै

सैनिक शिक्षा: -

कालिदास ने रघुवंश
है कि क्षत्रिय पुत्र पाँच वर्ष की अव
जो स्वयं शस्त्र विद्या में पारंगत थे,

युद्ध-विद्या को धनुर्वेद
दी जाती थी और अपराह्न में इति
क्षत्रिय विद्यार्थी के लिए विद्या तथ
ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसे किसी
इन विद्यार्थियों को विद्या विनीत
नहीं होता था।

सेना के अंग और सेनाधिकार

गुप्त सम्राटों ने विभि
नाम भी उन्होंने अपने पूर्व युग से

गुप्त साम्राज्य के का
विभाग होते थे। पैदल, अश्वा
प्रत्येक हाथी पर तीन योद्धा और
का महत्व दिन प्रतिदिन कम हो र
विभाग पाँच सदस्यों की एक स
परिषद होती थी जिसमें छः विभ

सेना के अंग के रुप
तक धनुर्धर अश्वारोही सैनिकों
है। गुप्त काल में चन्द्रगुप्त द्वि
अश्वारोही धनुर्धर के रुप में उ
बाड़ का प्रयोग घोड़े पर बैठ क

Unit II

प्रश्न. 1. गुप्तकाल के दौरान युद्धकला के प्रतिमान की विवेचना कीजिये एवं 7 वीं सदी के अश्वारोही सेना के उत्थान के कारण बताइए। (2003)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. गुप्तकाल के युद्ध कला के प्रतिमान की विवेचना कीजिये। (2006, 08)

प्रश्न. गुप्तकालीन सैन्य व्यवस्था का वर्णन कीजिये। (2011)

उत्तर. सैन्य व्यवस्थाः -

गुप्त सम्राट एक अपराजेय सेना के स्वामी थे। गुप्तों की सैन्य व्यवस्था लगभग मौर्यों के समान थी परन्तु उसके संगठन में कुछ शिथिलता थी। समुद्रगुप्त ने सम्प्रभुता स्वीकार करने और कर अदा करने के बदले विजित क्षेत्रों को कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्रदान की और इस प्रकार उसने सामन्तवादी व्यवस्था का शुभारम्भ किया। तीसरी और चौथी शताब्दी में हिन्दु राजनीति ऐसी थी कि वह विशिष्ट सामन्ती प्रवृत्तियाँ और क्षेत्रीय आत्मवाद के पक्ष में थी।

मौर्य साम्राज्य की केन्द्रीकरण की नीति बिल्कुल स्पष्ट थी और उसके बाद चौथी शताब्दी में पुनः जब साम्राज्य का निर्माण हुआ तो उसमें बड़ी संख्या में ऐसे सामन्त राजा सम्मिलित थे, जो सम्राट को कर देते थे और शाही सेना के लिए सैनिक टुकड़ियाँ भी भेजते थे।

सैनिक शिक्षाः -

कालिदास ने रघुवंश में कुमार रघु की शिक्षा ग्रहण का जो वणर्न किया है, उससे पता चलता है कि क्षत्रिय पुत्र पाँच वर्ष की अवस्था से विद्याध्ययन करना पड़ता था। कालीदास ने लिखा है कि दिलीप जो स्वयं शस्त्र विद्या में पारंगत थे, अपने पुत्र रघु को आयुध विद्या की शिक्षा देने लगे।

युद्ध-विद्या को धनुर्वेद कहा जाता था। प्रातः काल शस्त्र-प्रयोग की नीति और रीति की शिक्षा दी जाती थी और अपराहन में इतिहास की कथा सुनायी जाती थी। वीर पूर्वजां के पराक्रम आदि की कथा क्षत्रिय विद्यार्थी के लिए विद्या तथा शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जाता था। शास्त्रों में व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसे किसी योद्धा का शिष्यकारु बनना पड़ता था। गुरु-गृह मे अनुशासन का पाठ इन विद्यार्थियों को विद्या विनीत बनाता था। आयुध शिक्षा प्राप्त सैनिक कभी अपने धनुष-बाण से अलग नहीं होता था।

सेना के अंग और सेनाधिकारः -

गुप्त सम्राटों ने विभिन्न विभागों का रुप प्राचीन परम्परा के अनुरुप ही रखा और पद इत्यादि के नाम भी उन्होने अपने पूर्व युग से ही ग्रहण किये।

गुप्त साम्राज्य के काल में सेना का परम्परागत चतुरंग रुप ही सामने आता है। परन्तु सेना में छः विभाग होते थे। पैदल, अश्वारोही, गजसेना, रथ सेना, नौ सेना तथा परिवहन एवं आपूर्ति विभाग। प्रत्येक हाथी पर तीन योद्धा और एक महावत तथा प्रत्येक रथ में दो योद्धा और एक सारथी होता था। रथों का महत्व दिन प्रतिदिन कम हो रहा था। विदेशों से व्यपार के कारण नौ सेना का महत्व बढ गया था। प्रत्येक विभाग पाँच सदस्यों की एक समिति के आधीन काम करता था। राजा को परामर्श देने के लिए एक युद्ध परिषद होती थी जिसमें छः विभागों के एक-एक सदस्य सम्मिलित होते थे।

सेना के अंग के रुप में अश्वारोही सैनिकों का महत्व काफी बढ गया था परन्तु गुप्त काल के पूर्व तक धनुर्धर अश्वारोही सैनिकों के अस्तित्व का न तो कोई उल्लेख मिलता है और नहीं कोई प्रमाण मिलता है। गुप्त काल में चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त प्रथम और प्रकाशादित्य की मुद्राओं पर उनके चित्र अश्वारोही धनुर्धर के रुप में उत्कीर्ण देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि घुड़सवार सैनिक भी धनुष-बाड़ का प्रयोग घोड़े पर बैठ कर करने लगे थे। कुछ इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि पार्थियनों द्वारा

प्रचलित यह युद्धशैली बहुत दिनों तक भारत भूमि पर न चल सकी और गुप्त युग के बाद इसका अंत हो गया था। धनुर्धर अश्वारोही सेना के विकास पर उचित ध्यान न देना भारतीय शासकों की मध्यकाल में तुर्कों और अफगानों तथा मुगलों के बीच पराजय का कारण बना।

सैन्य पदाधिकारी: -

प्रयाग प्रशस्ति और बसाढ़ में खुदाई में बहुत सी मिट्टी की बनी सीले प्राप्त हुई है, जिनसे उस समय के कई पदाधिकारियों के नाम प्राप्त होते है। इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में सैनिक और असैनिक पदाधिकारियों के दो ग्रेड थे, जिसमें उच्च पदाधिकारी के पद के सम्मुख 'महा' शब्द जोड़ दिया जाता था। राजा के आधीन कुछ उच्च सैन्य पदाधिकारीयों का उल्लेख इस प्रकार है -

1. महादण्डनायक - पुलिस का प्रधान और फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीश।
2. महासन्धिविग्रहिक - शान्ति और युद्ध का मंत्री
3. महासेनापति - सेना का सर्वोच्च सेनापति
4. महाबलाधिकृत - सेना का सर्वोच्च सेनानायक
5. महापिलुपति - गजसेनाध्यक्ष
6. महाबलाध्यक्ष - सेना का श्रेष्ठ नायक
7. महासामन्त - महा-सेनापति के समकक्ष पद दो सामन्तों को प्रदान किया जाता था।
8. भटाश्वपति - अश्वरोही सेना का सेनापति
9. बलाधिकृत - सेना का सर्वोच्च अधिकारी
10. रणभडाराधिपति - सैनिक वित्त सचिव। इस पद को आधुनिक कार्टर मास्टर के अनुरूप माना जा सकता है।

सैनिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त गुप्त कालीन असैनिक अधिकारियों के विभिन्न नाम अभिलेखों से प्राप्त होता है -

1. उपरिक - किसी प्रान्त का गर्वनर
2. कुमारामात्य - राजकुमार के मंत्रि
3. महाप्रतिहार - राजग्रह का प्रधान अधिकारी
4. विनयस्थितिस्थापक - विधि व्यवस्थापक। डॉ० अल्टेकर के अनुसार यह शिक्षा विभाग का अधिकारी था।
5. विनय शूर - मुख्य दोष निरिक्षक
6. दण्डपाशाधिपति - पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी।

सैन्य विन्यास और युद्ध कला: -

मौर्य काल और मौर्योत्तर काल में यूनानी, कुषाण तथा शक आदि विदेशी आक्रमणकारियों के साथ जो युद्ध हुए, उसे भारतीय सेना के विभिन्न अंगो की विशिष्ट कमियों और दुर्बलताओं का अनुभव हो चुका था। गुप्तकाल के दिग्विजयी सम्राटों ने उन युद्ध के परिणामों से सीख ली और उसी के अनुरूप अपने सैन्य विन्यास में परिर्वतन और युद्धकला मे सुधार की आवश्यकता अनुभव किया।

सम्भवत: कुषाणों के पतन और मगध के उत्थान के साथ ही गुप्तशास्कों ने शक सेना के स्थान पर अपनी सेना का पुर्नगठन किया। पर्याप्त शस्त्रों से सुसज्जित अश्वारोही सैनिक की भूमिका युद्ध में अधिक प्रभावशाली और कारगर मानी जाने लगी। कालिदास रचित रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में राजा रघु के अपरान्त विजय की घटना का वर्णन है, जिससे पता चलता है कि प्रत्येक अश्वारोही सैनिक घुटनों तक पहनने वाला कवच धारण करते थे, उनके पास एक लम्बा बर्छा होता था और बहुत ही मजबुत धनुष और वाणों से भरा तुरीण होता था। इस युग के सैन्य-संचालन की प्रमुख विशेषता गतिशीलता थी। कालिदास के रघुवंश में राजा रघु की दिग्विजय मुहिम के वर्णन से जो तथ्य उभर कर सामने आता है, वह है - सेना

की गतिशीलता। मौर्ययुग में किलेबन्दी में विद्यमान सेना का शत्रु का सामना करने की रक्षात्मक युद्धकला गुप्तकाल में कमजोर पड़ने लगी थी। विदेशी आक्रमणकारी विशेष रुप से हूण सैनिक बड़े ही तेजी और गतिशील थे, पश्चिमोत्तर सीमा पार करके अयोध्या और प्रयाग तक हूणों का पहुँचना उनकी तीव्रता और गतिशीलता का स्पष्ट प्रमाण है। गुप्तकाल में युद्धकला में हुए परिवर्तनों पर विशेष ध्यान दिया गया और सैन्य विन्यास तथा युद्धकला का स्वरुप ही बदल गया।

सामान्यतया विभिन्न सैनिक दल भिन्न-भिन्न प्रकार की पंक्ति बद्ध सैन्य विचरना द्वारा विभिन्न प्रकार की सामरिकी का प्रयोग कर युद्ध में भाग लेते थे, जिसे 'व्यूह' कहा जाता था। शत्रु की सेना की संख्या, स्थिति और युद्ध कला को ध्यान में रखकर सेनानायक अपनी सेना की विशेष प्रकार की 'व्यूह' रचना में पंक्तिबध करता था। गतिशीलता और सुदूर स्थानों तक होने वाली सैन्य मुहिम के कारण रथ सेना का महत्व काफी कम हो गया था और धीरे-धीरे सेना के अंग के रुप में इसका अस्तिव समाप्त हो गया। युद्ध में धनुर्धर की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण थी।

आयुधः -

गुप्त काल में प्रयुक्त आयुधों का ज्ञान साहित्यिक साक्ष्यों के साथ ही साथ पुरातात्विक साक्ष्यों से भी प्राप्त होता है। जैसे - विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ एवं मुद्राएं। भरहुत स्तूप में दुर्ग पर आक्रमण करते हुए सशस्त्र सैनिकों के एक दल की मूर्तियाँ मिली हैं।

कालिदास द्वारा रचित 'रघुवंश' से भी उस युग में प्रयोग किए जाने वाले अस्त्रों-शस्त्रों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। शुक्रनीति में दो प्रकार के आयुध बताये गये हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उन आयुधों का उल्लेख है, जो मन्त्र, यन्त्र या अग्नि द्वारा प्रक्षेपित किये जाते थे। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत तलवार या छूरे आदि आते हैं। आक्रमणात्मक आयुधों के अन्तर्गत धनुष-बाण, शूल, त्रिशूल, शक्ति, वज्र, परशु, चक्र, असि, भिदिपाल, परिध, मुद्गर, तल, क्षुरप्र, भल्ल, गदा, ब्रह्मास्त्र या मोहनास्त्र, स्तिंग, शतघ्नी, भद्ग और कूटशाल्मलि। कालीदास ने लिखा है कि इनमें से अधिकांश आयुधों के प्रयोग करने पूर्व अभिमन्त्रित या विषयुक्त कर लिया जाता था। धनुषों में कार्मुक, कोदण्ड और धनुष का प्रयोग किया जाता था। बाण लम्बाई में नाभि तक आते थे। बाण बेंत या नरकट की लकड़ियों के बनते थे और उन पर भारी तथा तेज लोहे की नोकदार पत्तियाँ और पंखों की पूँछ लगी होती थी। क्षुरप्रबाण का उल्लेख शुक्रनीति में है। उच्चकोटि के सैनिकों के बाण पर उनके नाम भी अंकित होते थे। शूल, वर्छा, और त्रिशूल भाले के समान थे, इनमें अन्तर केवल फल का था। शूल में केवल एक नुकीला फल होता था जबकि वर्छा और त्रिशूल में तीन फल होते थे। रथारोही शक्ति का प्रयोग करता था, जो कि एक प्रकार का भाला होता था। एक टीकाकार ने शक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है कि 'करवीर' के पत्ते के आकार का चार हाथ लम्बा एक धातुमय आयुध जिसमें गो-स्तन के समान मूठ लगी होती थी। वज्र लोहे का डण्डा था। परशु कुठार था। भिन्दिपाल एक भारी दण्ड था जो गोले के समान फेंका जाता था। 'परिधा' एक दण्ड था जिसमें लोहे के काँटे जड़े हाते थे। मुद्गर लोहे का हथौड़ा होता था। भल्ल भाला था। गदा लोहे का डंडा होता था। युद्ध में दोलक काम में लाये जाते थे और कालीदास दोलक से पत्थर फेंकने की कला में पर्वतीय योद्धाओं की निपुणता की प्रशंसा करते हैं। नालिका एक प्रकार की बन्दूक थी। शुक्राचार्य ने दो प्रकार की नलिकाओं का उल्लेख किया है बड़ी और छोटी। छोटी सामान्यतः पैदल सैनिकों के द्वारा प्रयुक्त होती थी। बड़ी इतनी वजनी होती थी कि उसे बैल-गाड़ियों में लादकर लाया जाता था।

गुप्त काल में छुरी-कटारी और तलवारों के प्रयोग में वृद्धि हो गयी थी। गुप्तकालीन सैन्य वेश-भूषा के अन्तर्गत कटिवन्ध के दाहिने ओर छुरी कटारी (छुरिका, असिपुत्रिका) और बाँयी ओर तलवार झूलती रहती थी। रक्षा की दृष्टि से वर्म, शिरस्त्राण और हस्तवाण का उल्लेख पाते है। पहला गले के नीचे से घुटनों तक, दूसरा सिर और तीसरा भुजाओं की रक्षा करता था। ये प्रायः लोहे के बने होते थे। चमड़ा, लकड़ी और वास का प्रयोग ढाल बनाने में किया जाता था। युद्धक पशुओं के बचाव के लिए भी शुक्रनीति

होती थी कि वह उसके विरुध युद्ध की घोषणा कर दे। जब ऐसी नीति आदर्श मानी जाती हो तब पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण कर उसे विजित करना पूरी तरह से न्यायपूर्ण ही माना जाएगा। सम्भवत: समुद्रगुप्त कौटिल्य से इस बात पर एक मत था कि राजनीति में प्रशिक्षित बुद्धिमान राजा चाहे वह एक छोटे राज्य का अधिपति मात्र ही क्यों न हो, उसे चाहिये कि वह अपनी राजसत्ता के श्रेष्ठ गुणों से विभूषित होने पर विश्व विजय पर निकल पड़े। समुद्रगुप्त के दिग्विजय पर निकलने के पीछे यही कारण था।

कूटनीति: -

कूटनीति के सार्थक प्रयोग का जैसा विस्तृत उल्लेख हमें कौटिल्य अर्थ शास्त्र और मौर्य काल में देखने में मिलता है, वैसा गुप्त काल में देखने में नही आता है। दिग्विजय के उपरान्त चक्रवर्ती सम्राट के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विजित प्रदेश पर उसका नियंत्रण बना रहे, उस क्षेत्र के नागरिक सुखी और सम्पन्न रहें, उस क्षेत्र का सामंत विद्रोह न करे सके, सम्पूर्ण साम्राज्य में शान्ति बनी रहे और विदेशी राज्यों से मित्रता का सम्बन्ध बना रहे। इन उद्देशयों की प्राप्ति के लिए आवश्यक था कि राजा चतुर और कूटनीतिज्ञ हो। दूसरी शताब्दि से ले कर पाँचवी शताब्दि तक अनेक भारतीय समुद्र पार कर सुदूर पूर्व में जाकर बस गये और वहाँ पर उन्होने भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार के साथ ही साथ इन क्षेत्रों पर राज्कीय आधिपत्य भी स्थापित कर लिया, जिसका वर्णन चीनी यात्री फाहियान ने भी किया है। गुप्तकाल में भारतियों ने कम्बोडिया, चम्पा, ब्रह्मा, स्याम, मलय, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और बाली में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए थे। इन सभी स्थानो पर गुप्त सम्राटों के राजदूत-नियुक्त थे। वे कूटनीतिक अधिकारी होते थे, जो गुप्त सम्राट के हित में विदेशी राजा की सारी सूचनाएं एकत्रित कर गृह विभाग को पहुचाते थे। इन सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति होती थी और वे विदेशी राजदूतों की देख रेख में काम करते थे। गुप्तचरों को कालीदास ने राजनीतिक प्रकाश की किरणें कहा है। यह विभाग वैदेशिक मन्त्री के आधीन था।

प्रश्न. 2. हर्ष काल में युद्ध कला के प्रतिमानों की विवेचना कीजिये। (2013, 10, 05)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. हर्ष काल की सैन्य व्यस्था की विवेचना कीजिए। (2007)

उत्तर. हर्ष के विशाल साम्राज्य पर दृष्टिपात करने से कोई संदेह नहीं रह जाता कि उसकी सैन्य शक्ति एवं सैन्य पद्धति श्रेष्ठ रही होगी। परंतु संक्षिप्त साहित्यिक वर्णनों के अलावा इस काल की सैन्य पद्धति एवं युद्ध कला सम्बन्धी जानकारी लगभग अप्राप्त सी है। फिर भी इस काल की सैन्य पद्धति को हम निम्न प्रकार निरुपित कर सकते है।

मौर्य काल मे जन्मी तथा गुप्त काल में फली-फूली दिग्विजय की भावना इस काल में किसी न किसी रुप में विद्यमान थी जो कि प्रबल सैन्य शक्ति के आभाव मे कदापि सम्भव नही थी। अत: हर्ष विशाल सेना के संगठन के लिए विवश हुआ होगा। हर्ष के समय में स्थायी सेना थी. जिसको प्रशिक्षण एवं वेतन नियमित रुप से मिलता था। इस स्थायी सेना के अतिरिक्त सैनिक आवश्यकतानुसार युद्ध के समय एकत्रित किये जाते थे। ये सैनिक या तो सामन्तीय होते थे अथवा इन्हे थोड़े समय के लिए किराये पर इकट्ठा किये जाते थे। युद्ध काल के अतिरिक्त सेना राजकीय कार्यों जैसे कर वसूलने में तथा नागरिक प्रशासन में भी सहायक होती थी। राजा के परिवार के लोगों को भी समुचित सैनिक शिक्षा देने की व्यवस्था थी।

सेना के अंग: -

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस काल में चतुरंग बल के अस्तित्व का स्पष्ट वर्णन किया है। उसने लिखा है कि जब हर्ष ने अपना सामरिक जीवन प्रारम्भ किया उस उसकी सेना में 5,000 हाथी 20,000 अश्वरोही तथा 50,000 पैदल सैनिक थे।

अश्व सेना - ह्वेनसांग के वृतांतों में हर्ष की सेना में 1,00,000 अश्वारोही सेना का उल्लेख मिलता है।

यद्यपि उस समय घोड़े हर जगह पर्याप्त संख्या में पाये जाते थे। किन्तु बाण ने हर्ष के चरित में लिखा है
हर्ष की अस्तबल विभिन्न देशों के घोड़ों से युक्त थी। वह आगे लिखता है कि ये घोड़े अरब, कम्बोज,
और पारसीक देशों से आयत किये जाते थे। इस प्रकार हर्ष की अश्व सेना क्षमता और संख्या की दृष्टि
उसकी प्रमुख सामरिक शक्ति थी।

पैदल सेना - हर्ष की सेना में पैदल सैनिकों को भी काफी महत्व था। पैदल सेना आक्रमण और सुरक्षा
ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। ह्वेनसांग के अनुसार पैदल सैनिक लम्बे भाले, ढाल तथा
कभी तलवार ले कर चलते थे।

हस्ति सेना - ह्वेनसांग लिखता है कि मुख्य सेनापति हाथी पर चलता था जो कि कवच से युक्त होता
हाथी के दोनों तरफ दो सैनिक इसके दिशा निर्देश हेतु चलते थे। ह्वेनसांग द्वारा हर्ष की सेना में 60,0
हाथी थे। इसके विपरीत शुक्र ने अपने नीतिसार में लिखा है कि हाथियों की अधिकता से रक्षा व्यय बढ़ता
और सामरिक दृष्टि से उनकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं थी।

रथ - यद्यपि बाण ने रथों का उल्लेख नहीं किया है। परंतु ह्वेनसांग लिखता है कि सेना के
पदाधिकारी संग्राम क्षेत्रों में रथों पर आसीन होते थे। वस्तुतः इनकी उपयोगिता सामरिक दृष्टि से
सम्भवतः इनका प्रयोग विशेष अवसरों पर सामर्थ और वैभव के प्रदर्शन के लिए किया जाता

सैन्य विन्यास तथा सैन्य संचालनः -

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारतीय सेना के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है, उससे
कि हाथी पर बरछाधारी सैनिक होते थे। रथ पर एक नेता आदेश देता था। जबकि दाहिने
रथ चलाते थे। इस रथ में चार घोड़े अगल-बगल जुते होते थे। सैनिकों का सेनापति रथ में
रक्षकों की एक टुकड़ी द्वारा घिरा होता था। ये रक्षक रथ के पहिये के निकट ही होते थे।
आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए भेजा जाता था। जब पराजय होती थी तो यही
के लिए इधर उधर दौड़ाये जाते थे। पैदल सैनिक अपने फुर्तीलेपन के कारण
वे एक लम्बा बर्छा और ढाल या एक तलवार लिए प्रचंडता से
भागों का युद्ध क्षेत्र में अवस्थान का आभास मिला है।

भर्ती एवं वेतन - ह्वेनसांग के मतानुसार हर्ष की सेना निर्धनित थी। प्राचीन काल के अनुरूप
भी सभी वर्गों के व्यक्तियों को सैन्य सेवा का अवसर प्राप्त था। फिर भी भर्ती में बहादुर व्यक्तियों
परिवार के व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाती थी। ह्वेनसांग लिखता है कि
वस्तु तथा सैन्य सेवा वाले सैनिकों को नकदी वेतन दिया जाता था।

प्रशिक्षण - यद्यपि सैन्य प्रशिक्षण का कोई अलग केन्द्र नहीं था, परन्तु बाण भट्ट ने
से लेकर राजा तक के व्यायाम का उल्लेख किया है।

शस्त्रास्त्र - इस काल में शस्त्रास्त्रों का विस्तृत उल्लेख न प्राप्त होने बावजूद बाणभट्ट एवं
ह्वेनसांग के उल्लेखों से ये आभास मिलता है कि इस काल में युद्ध हेतु अधिकांशतः आक्रमणात्मक
कुछ सुरक्षात्मक हथियारों का भी प्रयोग होता था। सैनिकों की वेश-भूषा विदेशियों से प्रभावित थी।

किले-बन्दी - ह्वेनसांग नगरों के बाहर ईंटों द्वारा निर्मित ऊँची तथा चौड़ी दीवारों का उल्लेख
करता है कि इस समय भी पूर्ववर्ती कालों की तरह किले तथा किलेबन्दी का प्रचलन था। यह कहना
होगा कि किलेबन्दी के लिए पूर्व प्रचलित तरीके अपनाये जाते रहे होंगे जैसे - जल दुर्ग, धान्वन दुर्ग,
दुर्ग एवं पर्वत दुर्ग। समतल भूमि पर स्थित किलों की रक्षा के लिए किले की दीवार के चारों तरफ जल से
हुई खाई का निर्माण किया जाता रहा होगा। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दुर्गों की रचना को दृष्टि
रखकर ही हर्ष ने हाथियों को अधिक महत्व दिया ताकि शत्रु निर्मित दुर्गों को आसानी से ताड़ा जा सके।

शिविर - युद्ध के समय शिविर के चुनाव में विशेष ध्यान दिया जाता था और इसके लिए नदी के
स्थान उपयुक्त माना जाता था। इसके दो कारण थे (i) सेना को स्वच्छ जल मिल सके (ii) नदी शत्रु से

के लिए एक प्राकृतिक बाधा का काम
सैन्य प्रयाण - बाण ने सैन्य प्रयाण
निर्धारित शुभ घड़ी तथा शुभ समय प्रा
भी ध्यान दिया जाता था। सेना सूर्योदय
एक बाजार चित्र को प्रस्तुत करता है।
के साथ चलते थे। प्रयाण के समय अ
से अधिक 16 मील का सफर तय कर

हर्ष चरित्र में बाण ने युद्ध
पहले दिन पूजा करते और रात को आ
या जिसका अर्थ कि सेना को आठ को
पंच गयी और यात्रा की तैयारी होने
उनके घर भेज दिया गया। सम्पूर्ण तैया
कर प्रयाण के लिए तैयार किया गय
प्रधान सेना का अभियान प्रारम्भ हु
युद्ध वाद्य - सैन्य अभियान और यु
के सेना के मार्च के समय राजा भी स
रहे थे प्रत्येक कदम पर नगाड़े की
उत्साहित करने के लिए सैन्य प्रया
वादि ध्वनि यंत्रों का प्रयोग युद्ध में
कूटनीति - इस काल में कूटनीति
कहा है कि कूटनीति सिद्धान्त अर्थ
ग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वै
करने के साधन रहे होंगे। समुचित
सकता है। बाण भट्ट ने लिखा है
सफलता का पता लग सके।

इस प्रकार स्पष्ट होता
नीति के विकास क्रम में वाह्य आ
बल्कि विशाल हिन्दु साम्राज्य
यु के साथ ही और तुर्की के लोगों
अन्तिम समय में प्रशासनिक
परन्तु यह भी उल्लेख है कि हर्ष के
शीलता के प्रभाव में वृद्धि के का
के महत्तव में निरन्तर वृद्धि होत

न.3. राजपूत काल की यु

र. राजपूत बड़े ही स्वाभि
और कष्टसहिष्णु बना दिया।
पूत कुल में जन्म ही युद्ध करने
ई प्रकार की युद्ध कला विकसि

के लिए एक प्राकृतिक बाधा का काम करती थी।

सैन्य प्रयाण - बाण ने सैन्य प्रयाण का वर्णन करते हुए लिखा है कि सैन्य अभियान ज्योतिषियों द्वारा निर्धारित शुभ घड़ी तथा शुभ समय प्रारम्भ होता था। इसके साथ ही साथ यात्रा में शकुन एवं अपशकुन का भी ध्यान दिया जाता था। सेना सूर्योदय के समय प्रयाण करती थी। उसने आगे लिखा है कि सेना का प्रयाण एक बाजार चित्र को प्रस्तुत करता है। जिससे भोग विलास की सारी वस्तुएँ तथा कमाण्डरों के परिवार सेना के साथ चलते थे। प्रयाण के समय अनुशासन नाम की कोई चीज नही होती थी। सेना एक दिन में अधिक से अधिक 16 मील का सफर तय करती थी।

हर्ष चरित्र में बाण ने युद्ध यात्रा का विस्तृत रुप से वर्णन किया है। उसने लिखा है कि यात्रा के पहले दिन पूजा करते और रात को आराम के उपरान्त प्रात: तीन बजे कूच का नगाड़ा आठ बार बजाया जाता था जिसका अर्थ कि सेना को आठ कोस दूरी जय करना होता था। नगाड़े की ध्वनि के साथ सेना में हलचल मंच गयी और यात्रा की तैयारी होने लगी। तम्बू आदि उखाड़ कर हाथियों पर लादे जाने लगे, बधुओं को उनके घर भेज दिया गया। सम्पूर्ण तैयारी के उपरान्त ध्वजारोही को सेना के आगे खड़ा कर सेना को व्यूह बद्ध कर प्रयाण के लिए तैयार किया गया। इसके बाद सम्राट हर्ष ने सेना का निरीक्षण किया, निरीक्षण के उपरान्त सेना का अभियान प्रारम्भ हुआ।

युद्ध वाद्य - सैन्य अभियान और युद्धों में वाद्य यन्त्रों का भी प्रयोग किया जाता था। ह्वेनसांग लिखता है कि सेना के मार्च के समय राजा भी साथ चलता था। सैकड़ों की संख्या में लोग जो कि सुनहरा नगाड़ा लिए रहते थे प्रत्येक कदम पर नगाड़े की आवाज करते थे। अपनी सेना के उत्साह वर्धन तथा शत्रु सेना को हतोत्साहित करने के लिए सैन्य प्रयाण के समय नगाड़ा बजता था। बाण के अनुसार शंख दुन्दभि, नगाड़े आदि ध्वनि यंत्रों का प्रयोग युद्ध में होता था।

विदेशनीति - इस काल में कूटनीति सम्बन्धी किसी ग्रंथ की रचना न होने के कारण ऐसा विचार उचित जान पड़ता है कि कूटनीति सिद्धान्त अर्थ शास्त्र मनुस्मृति और नीजि शास्त्र से अनुप्राणित रहें होंगे। अत: सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वैधीभाव विदेशनीति के सिद्धान्त तथा साम, दाम, दण्ड, भेद क्रियान्वित करने के साधन रहें होंगे। समुचित अन्तर्राज्य सम्बन्धों के लिए गुप्तचर व्यवस्था के अस्तित्व का आभास मिलता है। बाण भट्ट ने लिखा है कि हर्ष स्वयं छद्म भेष में राज्य का भ्रमण किया करता था, जिससे वास्तविकता का पता लग सके।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हर्ष के प्रयत्नों के परिणाम स्वरुप गुप्त काल के बाद हिन्दू सैन्य पद्धति के विकास क्रम में वाह्य आक्रमणकारियों के कारण उत्पन्न अवरोध को न केवल समाप्त कर दिया गया वल्कि विशाल हिन्दु साम्राज्य की स्थापना हेतु अपेक्षित सेना का विकास भी किया था। परन्तु उसकी मृत्यु के साथ ही और तुर्की के लोगों ने भारतीय प्रभुता को पुन: चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दु काल के इस अन्तिम समय में प्रशासनिक व्यवस्था तथा सैनिक पद्धति के पूर्व प्रचलित सिद्धान्त ही अपनाये गये। परन्तु यह भी उल्लेख है कि हर्ष के समय में भी रथ सेना का महत्व घटता चला गया। इसके विपरीत युद्ध में गतिशीलता के प्रभाव में वृद्धि के कारण विदेशी आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध करने के लिए अश्वारोही सेना के महत्तव में निरन्तर वृद्धि होती गयी, जिससे अश्वरोही सेना समरतन्त्र का प्रमुख अंग बन गयी।

प्रश्न.3. राजपूत काल की युद्ध कला की प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिये।
(2012, 10, 07, 05)

उत्तर राजपूत बड़े ही स्वाभिमानी और युद्ध प्रिय थे। राजपूताना क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थियों में इन्हें वीर और कष्टसहिष्णु बना दिया। ये राजपूत आपस में निरन्तर युद्ध करते रहते थे। ऐसा समझा जाता था कि राजपूत कुल में जन्म ही युद्ध करने के लिए होता था। प्रत्येक राजपूत जन्मजात सैनिक होता था। इन राजपूतों ने कई प्रकार की युद्ध कला विकसित की।

राजपूतों की सेना पूर्णत: सामन्तवादी सेना थी। एक बड़े राजा के आधीन अनेक छोटे सामन्त होते थे। जिन्हें एक निश्चित संख्या में सेना लेकर राजा के पास आना पड़ता था। यदि वे ऐसा नहीं करते तो दण्डित होते थे और उनकी जागीर छिनने का भी भय रहता था।

राजपूत काल में घुड़सवार सेना का बहुत महत्व बढ़ गया था। सभी राजपूत अच्छे घुड़सवार सैनिक होते थे। घोड़े ही सेना को गति प्रदान करते थे। रेगिस्तानी क्षेत्र के कारण ऊँटों का महत्व भी बढ़ गया था। ऊँटों का प्रयोग पानी तथा अन्य-सैनिक, साजो-सामान को ढोने के लिए किया जाता था।

हर्ष काल के उपरान्त यद्यपि हाथियों का महत्व बहुत कम हो गया था, परन्तु फिर भी राजपूत राजा हाथियों पर सवार होकर युद्ध संचालन करते थे। इनके साथ ही हाथियों का प्रयोग किलों को तोड़ने तथा शत्रु को रौदने के लिए किया जाता था।

पैदल सेना में सैनिकों की संख्या सबसे ज्यादा होती थी। युद्ध की घोषणा होने पर सभी राजपूत अपने-अपने व्यक्तिगत अस्त्र-शस्त्र लेकर आ जाते थे। जिनके पास घोड़े नहीं थे, वे पैदल सेना का अंग बन जाते थे।

इस काल में राजपूतों ने राजपूताना क्षेत्र में अनगिनत दुर्गों का निर्माण किया, जो आकार में छोटे और बड़े होते थे। इन्हें गढ़ी कहते थे। जैसे - रणथम्भौर, नागौर, मण्डोर, समाना, हंसी, अजमेर, सिरसा आदि। इन दुर्गों की भूमिका दो प्रकार से महत्वपूर्ण होती थी - पहला, राज्य पर विदेशी आक्रमण की दशा में यह किले शत्रु को रोकने की दृष्टि से रक्षा पंक्ति का कार्य करते थे। दूसरे, राज्य की सेना एक स्थान पर केंद्रित न होकर विभिन्न स्थानों पर रहती थी तथा आवश्यकता अनुसार तत्काल सहायता प्राप्त हो जाती थी। इन दुर्गों में सैनिक, खाद्यान्न, साजो-सामान, तेल, पत्थर बड़ी मात्रा में संग्रहित होते थे।

राजपूत सेना में सैनिकों को अपने अस्त्र-शस्त्र स्वयं लाने होते थे। प्रत्येक राजपूत सैनिक व्यक्तिगत शौर्य पर अधिक विश्वास करता था तथा युद्ध प्रारम्भ होने पर वह अपने व्यक्तिगत पराक्रम का प्रदर्शन करने लगता था। युद्ध में विजय प्राप्त करना या वीरगति प्राप्त करना उसका उद्देश्य होता था। युद्धभूमि से पीछे हटना एक अतिनिन्दनीय कृत समझा जाता था। सेना को नगद वेतन देने की परम्परा नहीं थी। उन्हें जागीर प्रदान की जाती थी। सेना का चरित्र सामन्तवादि होने के कारण सैनिको की निष्ठा राजा के प्रति उसके सामन्त की निष्ठा पर निर्भर होती थी। राजपूत सैन्य पद्धति अथवा राजपूतों का कोई भी इतिहास जौहर प्रथा के वर्णन के बिना अधूरा जान पड़ता है। जब कोई राजपूत राजा यह देखता था कि विजय की कोई उम्मीद नहीं है, तब एक शुभ मूहूर्त में सभी पुरुष वर्ग केसरिया वस्त्र पहनकर किले का द्वार खोल कर युद्ध के लिए निकल पड़ते थे और समझा जाता था कि अब युद्ध में वीरगति प्राप्त करनी है। इन सैनिकों के बाहर जाते ही राजपूत स्त्रियाँ किले के अन्दर आग प्रज्वलित कर उसमें अपने को भस्म कर लेती थीं, जिसे जौहर कहा जाता था।

राजपूत सेना बहुत बड़ी होती थी। चन्द्रवरदाई ने कन्नोज की सेना का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब सेना का अगला दस्ता युद्ध भूमि में होता था तो पिछला हिस्सा शिविर में होता था। जय चन्द्र की सेना में कवच पहने 80,000 सैनिक तथा कपड़ों के कवच से ढके हुए 30,000 अश्वारोही सैनिक थे।

गुर्जर प्रतिहार और गहड़वालों की सेना में अनेक सैनिक अधिकारी जैसे - सेनाधिपति, कार्याधिकार पुरुष (गज सेना के लिए), तुरंग अधिकारी (अश्वारोही सेना के लिए), नैमित्तिका (ज्योतिषी) आदि होते थे। इसी प्रकार चंदेलों की सेना में महासेनापति, सेनापति, बलाध्यक्ष, महाव्यूहपति आदि होते थे। बंगाल के पालों की सेना में महासेनापति, सेनापति, बलाध्यक्ष, प्रान्तपाल, महासन्धिविग्रहिक, महाव्यूहपति आदि होते थे। इनकी सेना में नौ सेना विभाग भी था तथा एक विदेश विभाग भी होता था। बंगाल के पालों की सेना के सैनिकों को नियमित वेतन दिये जाने का उल्लेख मिलता है, यद्यपि इनकी सेना भी सामन्तवादी ही थी।

प्रश्न.4. सन् 1192 के तराइ
कारणों का वर्णन कीजिये।

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. तराइन के युद्ध का स
प्रश्न. 1192 के तराई के द्वि
प्रश्न. राजपूतों के पराजय

उत्तर. तराइन का युद्धः -

मुहम्मद गो
वंश को करना पड़ा। उत्तर-पश्चिम
भटिण्डा अपने राज्य के सीमान्त न
बीच विवाद का विषय भटिण्डा का
मील उत्तर-पश्चिम में स्थित और
दिल्ली साम्राज्य का सीमा दुर्ग था
जियाउद्दीन के नेतृत्व 1200 सैनि
जो इस समय दक्षिण में सैन्य अभि
का निर्णय लिया। उसने दो लाख
गोरी से युद्ध करने के लिए उत्तर
के उपरान्त गजनी की ओर वापस
सूचना पाकर मुहम्मद गौरी के पास
की ओर मुड़ा और तराइन के मैदा
जिले का एक गाँव है और थानेश्
भारत पर आधिपत्य
से संख्या में बहुत ज्यादा थे। संख
राजपूतों ने हाथियों पर से शँख
धौसा तथा तुरही बजाई और उसके
हरावल, जिसमें अफगान तथा
राजपूत आगे बढ़कर
शत्रु को तितर-बितर कर दिया औ
पर स्थित घुड़सवारों ने भागना शु
दबाव का सामना करने की हिम्म
ताकी नहीं रह गये है। इसलिए
उपेक्षा कर सुल्तान ने अपने निष्
रास्ता बनाकर राजपूत सेना के
हे थे, दूर से ही मुहम्मद गौरी
आ। सुल्तान के बल्लम से गो
हैका तो उससे मुहम्मद गोरी की
हमजोरी से उसे अपने घोड़े का
हूदकर, उसे गिरने से बचा लिय
ने मुँह से निर्देश देकर वह सुल
सुल्तान को अपने मध्य नहीं पाय

प्रश्न.4. सन् 1192 के तराइन के संग्राम में राजपूतों की पराजय के राजनैतिक एवं सैन्य कारणों का वर्णन कीजिये। (2003, 11)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. तराइन के युद्ध का सचित्र वर्णन कीजिये। (2004, 06)

प्रश्न. 1192 के तराई के द्वितीय संग्राम का वर्णन कीजिये। (2008)

प्रश्न. राजपूतों के पराजय के कारणों की विवेचना कीजिये। (2004)

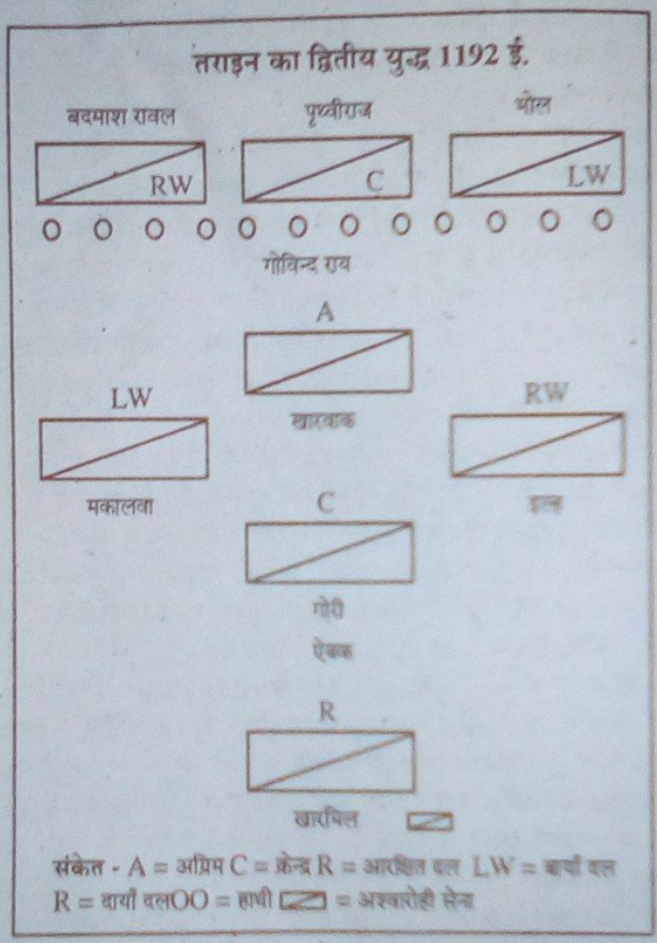
उत्तर तराइन का युद्धः -

मुहम्मद गोरी के नेतृत्व में आक्रमणकारी सेनाओं के प्रथम प्रहार का सामना चौहान वंश को करना पड़ा। उत्तर-पश्चिम से होने वाले सम्भावित आक्रमणों के विरुध रक्षा के लिए चौहानों ने भटिण्डा अपने राज्य के सीमान्त नगरों की सुदृढ़ किले बन्दी कर ली थी। हिन्दु तथा मुसलमान शासकों के बीच विवाद का विषय भटिण्डा का किला था। भटिण्डा लाहौर से 100 मील दक्षिण तथा दिल्ली से 150 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित और पंजाब के हिन्दु राजाओं की अन्तिम राजधानी थी और अब अजमेर-दिल्ली साम्राज्य का सीमा दुर्ग था। 1190 में मुहम्मद गोरी ने इस पर अधिकार कर लिया और काजी जियाउद्दीन के नेतृत्व 1200 सैनिकों की एक टुकड़ी को किले की रक्षा रक्षा हेतु नियुक्त कर दिया। पृथ्वीराज जो इस समय दक्षिण में सैन्य अभियान पर था, ने इस खतरे का सामना करने के लिए तुरन्त कार्यवाही करने का निर्णय लिया। उसने दो लाख अश्वरोही तथा तीन हजार हाथियों की एक सेना एकत्रित की और मुहम्मद गोरी से युद्ध करने के लिए उत्तर की ओर लौटा। दूसरी ओर मुहम्मद गोरी भी भटिण्डा पर अधिकार करने के उपरान्त गजनी की ओर वापस लौट गया। परन्तु पृथ्वीराज के नेतृत्व में राजपूत सेना के आगमन की सूचना पाकर मुहम्मद गौरी के पास जितनी सेना थी, उसी के साथ राजपूतों का सामना करने के लिए दक्षिण की ओर मुड़ा और तराइन के मैदान में दोनो पक्षों के बीच युद्ध हुआ। तराइन या तरौरी (तलवाड़ी) करनाल जिले का एक गाँव है और थानेश्वर से 14 मील दक्षिण में स्थित है।

भारत पर आधिपत्य के लिए तुर्कों तथा राजपूतों में एक महायुद्ध हुआ। हिन्दु सैनिक तुर्क सैनिकों से संख्या में बहुत ज्यादा थे। संख्या की अधिकता के कारण राजपूत सेना के दोनों पार्श्व आगे बढ़े हुए थे। राजपूतों ने हाथियों पर से शँख बजाकर आक्रमण करने का संकेत दिया, तो मुसलमानों ने ऊँटों पर रखे धौसा तथा तुरही बजाई और उसके साथ ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। राजपूतों के प्रचंड धावे से मुस्लिम सेना का हरावल, जिसमें अफगान तथा खोकर शेखीबाज थे, बादल की तरह बिखर गये।

राजपूत आगे बढ़कर तुर्की सेना के दोनों बाजुओं के दूसरी ओर चले गये। उन्होंने अन्दर बढ़कर शत्रु को तितर-बितर कर दिया और उनके मध्य भाग में आतंक फैला दिया। मुहम्मद गौरी की सेना के पार्श्वों पर स्थित घुड़सवारों ने भागना शुरु कर दिया, क्योंकि विजयोन्मत राजपूतों की घुड़सवार सेना के बढ़ते हुए दबाव का सामना करने की हिम्मत उनमें नहीं थी। सुल्तान से भी प्रार्थना की गयी कि अब उसके समर्थक बाकी नहीं रह गये है। इसलिए वह भी भागकर अपनी जान बचा ले, किन्तु इस कायरता पूर्ण सलाह की उपेक्षा कर सुल्तान ने अपने निष्ठावान साथियों की एक छोटी टुकड़ी को साथ लेकर मार-काट मचाते हुए रास्ता बनाकर राजपूत सेना के ऊपर टूटा पड़ा। पृथ्वीराज के भाई गोविन्दराय सेना के केन्द्र का नेतृत्व कर रहे थे, दूर से ही मुहम्मद गौरी को देखकर उस ओर अपना हाथी बढ़ाया। इन दोनों नायकों के बीच युद्ध हुआ। सुल्तान के बल्लम से गोविन्दराय के सामने के दो दाँत टूट गये और जब हिन्दु सेनाध्यक्ष ने भाला फेंका तो उससे मुहम्मद गोरी की बाँह में ऊपर एक गहरा घाव हो गया। इस आघात के कारण वेदना तथा कमजोरी से उसे अपने घोड़े का मुँह मोड़ना पड़ा। उसी समय एक खलजी युवक ने पीछे से गोरी के घोड़े पर कूदकर, उसे गिरने से बचा लिया। खलजी युवक ने उसे शस्त्रों सहित जीन पर ही संभाले रखा और घोड़े को मुँह से निर्देश देकर वह सुल्तान को सुरक्षापूर्वक डेरे पर ले आया। तुर्की सेना भागी और जब रुकी तो सुल्तान को अपने मध्य नहीं पाया। कुछ देर बाद एक खलजी युवक को आते देखा जो सुल्तान को लेकर आ

रहा था। इसके बाद मुहम्मद गोरी वापस गजनी चला गया। राजपूत इस विजय का पूरा लाभ नहीं उठा सके क्योंकि ऐसा करना राजपूतों की दृष्टि से धर्म युद्ध के प्रतिकूल था और दूसरे तुर्की सेना के खुरासानी घुड़ राजपूतों के अश्वारोही सेना से काफी आगे निकल गये थे। पृथ्वीराज भटिण्डा पर अधिकार कर वहीं रुक रहा।



मुहम्मद गोरी गजनी लौटने के बाद उसने इस पराजय का बदला लेने का निश्चय किया। उसने अपने उन सभी सरदारों को, जिन्होंने तराइन के मैदान में कायरता प्रदर्शित की थी, सार्वजनिक रुप से बर्खास्त कर दिया। भारत पर चढ़ाई करने के लिए उसने एक वर्ष तक युद्ध स्तर पर तैयारी की और 1,20,000 बख्तर बंद अश्वारोही सैनिकों की एक विशाल सेना तैयार की, जिसने तुर्की, अफगानी और ताजिक सैनिक सम्मिलित थे। इन सभी सैनिकों को घोड़े की पीठ पर बैठकर गतिशील अवस्था में धनुष से निशाना लगाने की कला का गहन प्रशिक्षण दिया गया था। ये सभी सैनिक कवचित और अस्त्र-शस्त्र से पूर्ण रुपेण सुसज्जित थे। जब मुहम्मद गौरी पेशावर पहुँचा तो उसने बुद्धीमतापूर्वक पुराने बर्खास्त सरदारों को क्षमा कर दिया और उन्हें एक अवसर प्रदान करने की दृष्टि से अपने पक्ष में सम्मिलित कर लिया। ये सरदार अपनी टुकड़ियों सहित उत्साहपूर्वक उसके साथ हो लिए। इन टुकड़ियों के पहुँचने के दूसरे दिन, जब सुल्तान की सेना शक्ति में वृद्धि हो गयी तब वह दिल्ली की ओर आगे बढ़ा। इसके विपरीत राजपूतों ने पूरा समय व्यर्थ में गवाया। जब गोरी के आने की सूचना मिली तब पृथ्वीराज चौके और उन्होंने सभी राजपूतों से अनुरोध किया तथा सहायता माँगी और इस प्रकार 3,00,000 घुड़सवार तथा 3,000 हाथियों की राजपूत

सेना गोरी की 1,20,000 घुड़सवा
की सेनायें थी।

चूँकी भटिण्डा राजपूत
से 10 मील की दूरी पर पड़ाव डाल
चेतावनी में पृथ्वीराज ने बिना लड़
को दी थी, क्योंकि राजपूत सेना,
अतिरिक्त सैन्य टुकड़ियाँ भी आ
वापस लौटने के समय उत्पन्न अ

मुहम्मद गोरी ने राज
करते हुए, उसने जवाब दिया कि
प्रस्ताव को एक संदेश वाहक के
शर्त पर आपसे सन्धि कर ले कि
राजाओं के पास रहे। जब तक इ
निलम्बित रखें।

मुहम्मद गोरी का
परिकल्पना कर ली कि शत्रु ने
के बावजूद भी राजपूतों ने युद्ध
जैसें बन्दी जैसी सतर्कता की अ
घोड़ा भी समय व्यर्थ नहीं गंवा
व्यवस्था बनायी, क्योंकि उस
शक्ति में वृद्धि कारक सिद्ध हो
रही थी। अत: सूर्योदय से पूर्व
पूरी कर ली और राजपूत सेना
ही राजपूत सेना पड़ाव के सम

शीत ऋतु के दि
निश्चिन्त थी। अत: अधिकांश
कि आक्रमण की खबर हिन्दु प
था और दूसरे मुहम्मद गोरी ने
प्रथम प्रहार का लाभ आक्रम

युद्ध योजना: -

मुहम्मद ने इस
और न लड़ने वालों को 10
साथ आगे बढ़ कर आया था
पर चारों ओर से आक्रमण
12000 बख्तर बन्द घुड़सव
था कि वे यथा क्रम आगे ब
के लिए आगे बढ़े तब भागने
जा सके। इस सामरिकी का
बाध्य किया जा सके। इसके
में थे, उनके पीछे केन्द्र में

सेना गोरी की 1,20,000 घुड़सवार सेना के निकट खड़ी हुई। राजपूतों की इस सेना में 150 राजपूत सामंतो की सेनायें थी।

चूँकी भटिण्डा राजपूतों के नियंत्रण में था इसलिए उससे बचकर मुहम्मद गोरी ने राजपूत सेना से 10 मील की दूरी पर पड़ाव डाल दिया। यहाँ उसे पृथ्वीराज की ओर से एक मित्रवत चेतावनी मिली। इस चेतावनी में पृथ्वीराज ने बिना लड़े वापस लौटकर अपने सैनिकों की जान बचाने की सलाह मुहम्मद गोरी को दी थी, क्योंकि राजपूत सेना, जिसके साहस का परिक्षण वह कर चुका था, विशाल थी और प्रतिदिन अतिरिक्त सैन्य टुकड़ियाँ भी आती जा रहीं थी। इसके साथ ही पृथ्वीराज ने आश्वासन दिया कि सेना के वापस लौटने के समय उत्पन्न अव्यवस्था के दौरान वह उसे सुरक्षा पूर्वक जाने देगा।

मुहम्मद गोरी ने राजपूतों को आश्चर्य चकित करने के उद्देश्य से कपटपूर्ण नीति का अनुसरण करते हुए, उसने जवाब दिया कि आपका प्रस्ताव और मित्रवत व्यवहार विशाल हृदयता का द्योतक है और प्रस्ताव को एक संदेश वाहक के साथ अपने भाई, जो शासक और सुल्तान है, के पास भेज रहा हूँ कि इस शर्त पर आपसे सन्धि कर ले कि भटिण्डा, पंजाब और मुल्तान गोर वंश के पास रहे और शेष हिन्दुस्तान राजाओं के पास रहे। जब तक इस पत्र का उत्तर प्राप्त न हो जाये तब तक आप से प्रार्थना है कि युद्ध को निलम्बित रखें।

मुहम्मद गोरी का कपटपूर्ण नीति सफल हुई। राजपूत उसकी चाल में आ गये और वह परिकल्पना कर ली कि शत्रु ने उनकी शक्ति से घबड़ाकर शान्ति प्रस्ताव भेजा है। सेना की संख्या में कमी के बावजूद भी राजपूतों ने युद्ध की कोई तैयारी नहीं की, इतना ही नहीं शत्रु के सम्मुख विद्यमान रहने पर मोर्चे बन्दी जैसी सतर्कता की आवश्यकता की भी अवहेलना की गयी। जबकि दूसरी ओर मुहम्मद गोरी ने थोड़ा भी समय व्यर्थ नहीं गंवाया। उसने दूसरे दिन सुबह हिन्दुओं पर आक्रमणात्मक कार्यवाही करने की स्वातेजी बनायी, क्योंकि उस समय उनकी सैन्य शक्ति अधिकतम थी और प्रतिदिन का विलम्ब शत्रु की शक्ति में वृद्धि कारक सिद्ध हो रहा था। इसके साथ ही उसकी रसद भी बेकार पड़े रहने के कारण घटती जा रही थी। अतः सूर्योदय से पूर्व ही प्रयाण करके राजपूत सेना के पड़ाव तक की दूरी बिना किसी क्षति केके पूरी कर ली और राजपूत सेना इस प्रत्यक्ष स्वातेजिक पहल के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके, इससे पूर्व ही राजपूत सेना पड़ाव के सम्मुख अस्थायी मोर्चा जमा लिया।

शीत ऋतु के दिन बहुत सुबह का समय था। राजपूत सेना आक्रमण के प्रति पूर्णरूप से निश्चिन्त थी। अतः अधिकांश सैनिक सुबह-सुबह दैनिक दिनचर्या में लगे हुए थे। यद्यपि ऐसा संभव है कि आक्रमण की खबर हिन्दु पड़ाव में कोई सनसनी नहीं पैदा हुई क्योंकि पड़ाव बहुत विशाल और विस्तृत था और दूसरे मुहम्मद गोरी ने अपने सैनिकों को आक्रमण के स्थान पर अपने पास रोके रखा था, फिर भी प्रथम प्रहार का लाभ आक्रमणकारी सेना को अवश्य प्राप्त हुआ होगा।

युद्ध योजनाः -

मुहम्मद ने इस बार बेहतर युद्ध कौशल का प्रयोग किया। उसने अपना भारी साजो-सामान और न लड़ने वालों को 10 मील पीछे अपने पड़ाव पर छोड़ दिया था। वह हल्के सामान और योद्धाओं के साथ आगे बढ़ कर आया था। उसने अपनी सेना को पाँच भागों में विभक्त किया। चार को उसने राजपूतों पर चारों ओर से आक्रमण करने के लिए तथा एक को आरक्षित दल के रुप में रखा। आरक्षित सेना में 12000 बख्तर बन्द घुड़सवार सैनिक थे, जो उत्तम नस्ल के घोड़ों पर सवार थे। इन घुड़सवारों को आदेश था कि वे यथा क्रम आगे बढ़कर दूर से राजपूतों पर वार करें, किन्तु जब राजपूतों की सेना प्रति आक्रमण के लिए आगे बढ़े तब भागने का ढोंग करके पीछे हट जाएं, जिससे राजपूतों के साथ संघर्षरत होने से बचा जा सके। इस सामरिकी का उद्देश्य राजपूतों को हतोत्साहित और उन्हें अपनी सैन्य विरचना तोड़ने के लिए बाध्य किया जा सके। इसके विपरीत राजपूतों की सेना के अग्रभाग में हाथी जो कि गोविन्द राय के नेतृत्व में थे, उनके पीछे केन्द्र में पृथ्वीराज स्वयं थे। उनके दाहिने पार्श्व पर बदनाश रावल अपनी टुकड़ी के साथ

ये तथा बायें पार्श्व पर खोत के नेतृत्व में राजपूत सेना थी।

युद्ध संक्रिया: -

मुहम्मद गोरी ने अपनी योजनानुसार सेना की चार टुकड़ियों को राजपूतों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उसकी इन पार्थियन चालों से राजपूत किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उन्होंने गोरी की अश्वारोही सेना का पीछा करने और पकड़ने के असफल प्रयत्न में अपनी शक्ति और समय को नष्ट किया। इस प्रकार यह युद्ध या दूसरे शब्दों में छिट-पुट आक्रमण और प्रति आक्रमण की श्रंखला सुबह 9 बजे से लेकर दोपहर बाद 3 बजे तक चलती रही। अन्तोगत्वा राजपूत सेना युद्ध की असफलता से हतोत्साहित तथा भूख-प्यास से शिथिल हो चुके थे, क्योंकि राजपूत सेना कटोरजाति-नियमों से आबद्ध होने के कारण तीन बजे से छः बजे तक एक बूँद जल ग्रहण किये बिना संघर्ष करते रहे।

युद्ध के निर्णायक समय में मुहम्मद गोरी का संकेत पाकर आरक्षित सेना के 12000 बख्तर बन्द अश्वारोही धनुर्धर सैनिक शिथिल राजपूत सैनिकों को तेजधार की तरह काटते हुए उनके केन्द्रीय भाग पर टूट पड़े। यह आक्रमणात्मक कार्यवाही परस्पर सहयोग और समन्वय के सिद्धान्त के प्रयोग के अद्वितीय उदाहरण है जिसके सम्मुख किसी भी सैनिक प्रतिरोध के ठहर पाने की कोई सम्भावना नहीं थी। परिणामस्वरूप पलक झपकते ही युद्ध समाप्त हो गया और राजपूत सैनिकों के पैर उखड़ गये और वे युद्ध क्षेत्र से भागने लगे, और इस भगदड़ में लगभग 10,000 राजपूत सैनिक काट डाले गये। राजपूत सेना के अग्रभागी दल का नायक गोविन्दराय पहले ही मारा जा चुका था। पृथ्वीराज हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हो गया और भागने वालों की भीड़ में फंस गया और सरस्वती नदी के तट पर पकड़ा गया। पृथ्वीराज के साथ-साथ राष्ट्रीय संगठन में शामिल अन्य 150 राजाओं में से अधिकांश मारे गये।

पृथ्वीराज की कब और कहाँ मृत्यु हुई, इस सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं। मिन्हाज-उस-सिराज के अनुसार उसका तुरन्त वध कर दिया गया था, परन्तु हसन निजामी का कथन है कि मुहम्मद उसे पकड़ कर अजमेर ले गये, जहाँ कुछ समय बाद विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया गया। दूसरा मत सही प्रतीत होता है, क्योंकि पृथ्वीराज के कुछ सिक्कों पर भी विवरण है जिन पर संस्कृत में हम्मीर खुदा है। इससे यही विदित होता है कि पृथ्वीराज ने मुहम्मद की आधीनता स्वीकार कर ली थी और इस युद्ध के बाद भी कुछ समय तक जीवित रहा। चन्द बरदाई का कथन है कि मुहम्मद पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले गए और वहीं मुहम्मद गोरी को मार डालने के अपराध में उसका वध किया गया, परन्तु लेखों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती है।

परिणाम: -

शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी की तराइन विजय केवल एकाकी एकनैतिक घटना नहीं थी, बल्कि एक शक्तिशाली विजेता की लगातार विजयों में से एक सुनिश्चित विजय थी। इस विजय का लक्ष्य था भारत में मुस्लिम-तुर्की साम्राज्य की स्थापना थी। इस दृष्टि से यह युद्ध भारतीय इतिहास की एक युग परिवर्तनकारी घटना है। यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ और इससे मुहम्मद गोरी की भारत विजय सुनिश्चित हो गयी। इसने चौहानों की सैन्य शक्ति को पूर्णतया भंग कर दिया। तराइन की विजय के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने शीघ्र ही हाँसी, कुहराम, सरस्वती आदि सैनिक महत्व के स्थानों पर अधिकार कर लिया और उनकी रक्षा के लिए तुर्क सैनिक नियुक्त कर दिये। इस विजय के द्वारा तुर्की विजयों का सैनिक पक्ष समाप्त हुआ और दिल्ली सल्तनत के प्रशासनिक रूप के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया और इतिहास में पहली बार मुहम्मद गोरी ने हिन्दुस्तान के बीचों-बीच एक राज्य की नींव डाल दी।

पराजय के कारण: -

इस युद्ध ने राजपूतों की कमर तोड़ दी। राजपूत अदूरदर्शी थे। तराइन के प्रथम युद्ध के बाद न तो उन्होंने गोरी का पीछा किया और न ही यह समझा कि गोरी पुनः आक्रमण करेगा और उन्होंने अपनी कोई सैनिक तैयारी नहीं की, जबकि गोरी ने एक वर्ष का समय युद्ध में लगाया। इसके अतिरिक्त गोरी के

घुड़सवार राजपूत घुडसवार सैनिक से अधिक कुशल थे। उनमें गतिशीलता अधिक थी। गोरी ने पूरी योजना बना कर युद्ध किया, उसने राजपूतों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे उसके द्वारा चुने गये स्थान और समय पर युद्ध करें। राजपूत भूखे पेट युद्ध कर रहे थे। उन्होंने कोई आरक्षित सेना नहीं रखी थी और धोखे में आ गये थे। वास्तव में यह युद्ध मुहम्मद गोरी के कुशल नेतृत्व का परिणाम था।

राजपूतों की पराजय के अनेक कारण थे जो कि राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इतिहासकार हसन निजामी, मिनहाज उस सिराज तथा फखे मुदब्बीर में से प्रथम दो ने तुर्की विजय को दैवी कृपा माना है। फखे मुदब्बीर ने अदब-उल-तर्ब नामक ग्रंथ में दो महत्वपूर्ण सैनिक कारणों का उल्लेख करता है। प्रथम, तुर्की युद्ध कला अश्वारोही सेना की गतिशीलता के समरतंत्र पर आधारित थी, और दूसरे भारतीय राजपूतों की सामन्तवाद की दोषपूर्ण पद्धति पर गठित थी।

जादुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक भारत का सैन्य इतिहास में एच० ए० एल० फिशर को उद्धत करते हुए लिखते है कि इस्लाम द्वारा अरब, पठान तथा तुर्क जाति को प्रदत्त तीन सदगुण ही उनकी विजय के तीन आधार थे। प्रथम कानूनी है। सियासत तथा धार्मिक आधार के मामले में पूर्ण रुप से सामाजिक समानता, जिसमें उनमें जाति भेद के स्थान पर भाई-चारे की भावना का संचार हुआ। दूसरे, अपने भाग्य को पूर्ण रुप से अल्लाह के भरोसे छोड़ने की नियतीवादि धारणा के कारण मुस्लिम सैनिकों में युद्ध के दौरान मृत्यु के प्रति तिरसकार की भावना का जन्म हुआ और वे निर्भीक होकर युद्ध करते थे। तीसरे, मद्यपान निषेध। कुरान मद्यपान निषेध करता है और मद्यपान दण्डनीय अपराध है। इसके विपरीत राजपूत तथा अन्य हिन्दू सैनिक नशे के कारण युद्ध के मैदान में कुशल सामरीकि तथा आकास्मिक आक्रमण के समय श्रेष्ठ युद्ध कला के प्रदर्शन की क्षमता खो बैठते थे। यहाँ तक कि वे अपनी सेना के पड़ाव के समय सुरक्षा की योग्यता भी खो चुके थे।

राजपूतों की पराजय के कारणों की व्याख्या की दृष्टि से यह मत आकर्षक लुभावना, तर्क संगत और सारगर्भित प्रतीत होता है, परंतु अब सर्वमान्य नहीं रहा। तुर्क विजेता सामाजिक एकात्मकता की भावना से ओत-प्रोत कभी नहीं रहें और न ही अपना कार्य पूणत: अल्लाह के भरोसे छोड़ते थे और न ही सामाजिक कुरीतियों की पूर्ण तिलांजति दे सके।

राजनीतिक कारण: -

तुर्की आक्रमण के पूर्व भारत अनेक राज्यों में विभाजित था। इनके शासक अपने राज्य के विस्तार तथा वंश की प्रतिष्ठा के लिए एक दूसरे से निरन्तर युद्ध करते थे, जिसके कारण इनमें परस्पर ईर्ष्या-द्वेष, प्रतिस्पर्धा चरम सीमा पर थी। इस काल में राजवशों के प्रशासन तथा राज्य के ढाँचे में एक सीमा तक जनजातीय तत्व विद्यमान थे। जो एक लम्बे समय से हो रहे सामाजिक वर्गीकरण (वर्ण व्यवस्था के आधार पर) की प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम था। अनेक राजपूतवंशों का उदय इसी सामाजिक प्रक्रिया की देन है। वंश विशेष या समान जाति के लोग ही राज प्रशासन तथा सैनिक शक्ति के आधार थे, जो जन जातीय चेतना का एक अंग है। इस मनोवैज्ञानिक भावना के कारण अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए वे युद्ध में प्राण निछावर कर देते थे और साथ ही दूसरे राजवंश की सत्ता उन्हें अपमान स्वरुप प्रतीत होती थी। इसके साथ ही प्रशासन तथा सेना के उच्च पदों पर ब्राह्मण तथा राजपूतों की अधिकांश नियुक्तियाँ वंशानुगत होती थी। इससे एक ओर तो अन्य वर्ग तथा जाति के लोग राज्य के प्रति उदासीन हो गये और दूसरी ओर अयोग्य व्यक्ति उत्तराधिकारी के रुप में उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त करने लगे। निम्न वर्ग में संकट के समय राज्य या राजा के लिए संघर्ष की भावना का आभाव एक स्वाभाविक तथ्य है।

राजनीतिक एकता के आभाव में सामंतीकरण की प्रकिया ने भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। एक केन्द्रीय राज्य के अन्तर्गत अनेक सामन्त तथा इनके नीचे क्रमिक से अन्य छोटे-छोटे सामन्तों के अस्तित्व का महत्वपूर्ण कारण यह था कि राज्य की आर्थिक स्थिति का मुख्य स्रोत भूमि सामन्तों को हस्तान्तरित कर दी गयी थी। ये सामन्त अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, और सैनिक शक्ति को

निरन्तर सुदृढ़ बनाने का यत्न करते रहते थे, जो कि केन्द्रीय सत्ता की सुरक्षा और सम्प्रभुता के लिए एक स्थाई खतरा था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि एक दूसरे को पराजित की लम्बी प्रकिया से यह निष्कर्ष स्वाभिक जान पड़ता है कि किसी भी राज्य में सैनिक शक्ति की श्रेष्ठता, स्वातेजी और रणनीति की दृष्टि से युद्ध कला की नवीन प्रणालियों के प्रयोग की क्षमता नहीं थी। इन कारणों से तुर्की आक्रमण के पहले ही भारत में एक केन्द्रीय शक्ति की शून्यता की स्थिति थी। इस शक्ति शून्यता को भरने के लिए परस्पर संघर्षरत राजपूत राज्य में तुर्की आक्रमण के सम्मुख राजनीतिक एकता और संयुक्त शक्ति के संगठन का तत्व लुप्तप्राय हो चुका था। तुर्कों ने एक-एक करके सभी राजपूत राज्यों को पराजित कर दिया। 989 ई० में सुबुकतिगीन के विरुद्ध तथा 1008 ई० में महमूद के विरुद्ध क्रमशः जयपाल तथा आनन्दपाल को प्रतिहार, चौहान तथा चंदेल (989 ई० में) तथा उज्जैन, कालिंजर, दिल्ली तथा अजमेर के शासकों (1008 ई० में) सहायता देना भारत के राजपूत राज्यों की जागरूकता का उल्लेखनीय उदाहरण है किन्तु भारत की मूल राजनीतिक दुर्बलता पर इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा।

राजपूत राज्यों में विदेशों में हो रहे परिवर्तनों पर नजर रखने और उनके प्रभावों की व्याख्या करने हेतु कोई राजनयिक सम्बन्ध नहीं स्थापित किये। जन कल्याणकारी कार्यों की उपेक्षा के कारण वे जन समर्थन खो चुके थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इन सभी दुर्बलताओं का लाभ तुर्कों को मिला।

सामाजिक कारण: -

वर्ण तथा जाति-व्यवस्था के कारण भारतीय समाज कई वर्गों में विभक्त था। छुआछूत, उच्चता की भावना तथा भू-स्वामियों द्वारा निम्न वर्ग के खेतिहर तथा अन्य श्रमिकों को शोषण के कारण समाज दुर्बल हो रहा था। शोषित वर्ग में देश या राज्य की सुरक्षा अथवा विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध की भावना के विद्यमान होने की भावना ने जहाँ उनमें एक ओर आत्मविश्वास तथा साहस को बढ़ावा दिया। वे झगड़ालू तथा जिद्दी होते गये। इसके अतिरिक्त शराबखोरी, जुआ, बहु-विवाह, विधवों की हीन दशा आदि बुराइयाँ समाज को अनेक दृष्टि से कमजोर बनाती जा रही थीं। साथ ही शासक वर्ग की श्रेष्ठता तथा चरित्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगा था। उच्च वर्ग की श्रेष्ठता के कारण वे विदेशों से भी स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सके और देश में पृथकतावादि प्रवृत्ति ने घर कर लिया। स्मृति यात्रा अत्यन्त घातक होने लगी। अल-बिलादुरी का कथन है, 'हिन्दुओं को यह विश्वास है कि अन्य कोई देश उनके जैसा (श्रेष्ठ) नहीं है, इनके राजा के समान अन्य राजा नहीं है। उनके शास्त्रों के समान कोई शास्त्र नहीं है। यदि वे यात्रा करके अन्य देश के लोगों से मिले तो उनका मत शीघ्र ही बदल जायगा।' इस मनोवृत्ति ने राजपूतों को बाह्य संसार में विकसित हो रहे राजनीतिक समीकरण, ज्ञान-विज्ञान तथा युद्ध कला की नवीन प्रणालियों के ज्ञान से स्वयं को तथा अपने समाज को अनभिज्ञ रखा। दूसरी ओर व्यापार और वाणिज्य के माध्यम से भारत सम्बन्धी प्रत्येक सूचना बाह्य आक्रमणकारियों के पास पहले से ही विद्यमान रहती थी।

अल-बिलादुरी के कथन से यह पक्ष भी प्रस्तुत होता है कि राजपूतों में अपने देश तथा संस्कृति के प्रति प्रेम अवश्य था, परन्तु विभेद के अनेक कारणों ने राष्ट्रीयता की अनुभूति की भावना या धारणा को विकसित नहीं होने दिया। यह राजपूत राज्यों की मूलभूत सैनिक दुर्बलता को प्रदर्शित करता है। इस्लाम धर्मानुयायी तुर्कों में अनेक सामाजिक दोषों के बावजूद एकता की भावना थी।

धार्मिक कारण: -

धार्मिक दृष्टि से भी भारत अनेक संप्रदायों तथा उप-संप्रदायों में विभक्त था। धार्मिक क्षेत्र में समन्यवादी तथा उदारवादी प्रवृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास तथा मान्यताएं यहाँ प्राचीन काल से पनप रही थी। भारतीयों की व्यक्तिवादी मनोवृति इन मान्यताओं के मूल्य में निहित थी। इस्लामी समाज की एकता भारत के धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में असंभव थी। दूसरे धर्म द्वारा पोषित कर्म और संसार के दार्शनिक मान्यता ने अधिकांश भारतीयों को दु:ख सहने का अभ्यस्त बना दिया था। नियतीवादी तथा भाग्यवादी विश्वास के कारण भी वे विदेशी आक्रमण तथा यातनाओं को पूर्व-जन्म के कर्मों का फल

मानते थे, जिसकी वजह से जन साधारण ने संयुक्त हो कर उसका प्रतिरोध नही किया।

सैनिक कारण: -

राजपूतों की पराजय के प्रमुख कारण सैनिक महत्व के है। सैनिक कारणों को स्त्रातेजिक, सामरिक तथा सैन्य नेतृत्व की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

सभी इतिहासकार स्वीकार करते है कि उत्तर पश्चिम से भारत पर हमला करने वाली तथाकथित तुर्की सेना मे तुर्क, पारसी तथा अफगान पेशेवर सैनिक थे। यह सम्पूर्ण सैनिक सेना धनुष-बाणों से सज्जित सैनिको की अश्वारोही सेना थी। तुर्क आक्रणकारी सैनिक संगठन, युद्ध-नीति, अस्त्र-शस्त्र और नेतृत्व की दृष्टि से भारतियों की तुलना में सफल और श्रेष्ठ सिद्ध हुई।

राजपूत साहस एवं शौर्य मे तुर्कों से कम न थे, परन्तु उनका युद्ध और लक्ष्य के प्रति दृष्किोण नैतिकता के उच्चतम मापदण्डों पर आधारित था। युद्ध उनके लिए धर्म था, खेल था अत: युद्ध के दौरान भी वे परिणामपरक कार्य नहीं करते थे। दूसरी ओर तुर्कों का लक्ष्य विजय प्राप्त करना था, चाहे उसके साधन कुछ भी हो। राजपूत बहादुरी और युद्ध में मृत्यु के प्रति अवहेलना की दृष्टि से अद्वितीय थे। वे एक आदर्श योद्धा तथा सैनिक सम्मान की भावना से प्रेरित थे, जो उन्हें युद्ध में व्यवहारिक सफलता प्राप्त करने के लिए प्राय: अयोग्य बना देती थी।

तुर्कों की तुलना में राजपूतों का सैनिक संगठन दुर्बल था। राजपूतों का सैनिक-संगठन सामंतवादी था और सैनिक अपने-अपने सामंत के नेतृत्व में युद्ध करते थे। इस प्रकार एकत्रित की गयी सेना से एक निश्चित योजना, एक निश्चित लक्ष्य, एक निश्चित नेतृत्व में परस्पर सहयोग से युद्ध करने की कल्पना करना ही निरर्थक है। भारतीय सेना परस्पर संघर्षरत रहने के कारण युद्ध से ऊब चुकी थी, जबकि तुर्कों की सेना विभिन्न वर्गों और नस्लों के व्यक्तिगत सम्मिलन से बनी होने के बावजूद एक नेतृत्व, एक अनुशासन, एक योजना और एक लक्ष्य के लिए युद्ध करती थी।

युद्ध के साधन की दृष्टि से तुर्की सेना की श्रेष्ठता के दो प्रमुख कारण थे, घोड़े और धनुष-बाण। उस समय गतिशीलता तुर्की सैन्य संगठन का मुख्य आधार थी। यह युग अश्वारोही सेना का युग था और गतिशील तथा धनुष-बाण से सुसज्जित अश्वारोही सेना उस युग की महान आवश्यकता थी।

Unit III

प्रश्न.1. अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य एवं आर्थिक सुधारों पर टिप्पणी लिखिए।
(2003, 04, 05, 06, 07, 08)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक सुधारों की विवेचना कीजिये। (2010)
प्रश्न. सुलतानों के समय में युद्ध कला की प्रमुख विशेषताएं लिखिए। (2008)
प्रश्न. सुलतानों के काल में युद्धकला के प्रतिमानों की विवेचना कीजिये। (2009)
प्रश्न. सुलतानों के काल की सैन्य व्यवस्था का वर्णन कीजिये। (2013)
प्रश्न. अलाउद्दीन खिलजी के सैन्य एवं आर्थिक सुधारों की विवेचना कीजिये। (2012)

उत्तर. अलाउद्दीन के सैनिक सुधार: -

जियाउद्दीन बरनी अपने ग्रन्थ फतवा-ए-जहाँदारी में लिखता है, कि "राजत्व दो स्तम्भों पर स्थापित रहता है - पहला स्तम्भ है प्रशासन और दूसरा विजय। इन दोनों स्तम्भों का आधार है सेना। यदि शासक सेना के प्रति उदासीन है तो वह अपने ही हाथों से राज्य का विनाश करता है" अतः वह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि "राजत्व ही सेना है और सेना राजत्व है।" मध्यकालीन भारतीय राजतंत्र में सेना को अतयंत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था।

अलाउद्दीन जैसा तहत्वकांक्षी और साम्राज्य निर्माता किसी भी प्रकार अपनी सेना की उपेक्षा नहीं कर सकता था। चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में रणथम्भौर और चित्तौड़ ने उसकी सैनिक कठिनाइयाँ, पूरब में मलिक जूना के असफल अभियान और तत्पश्चात इसी समय दिल्ली पर लगी डेरा के नेतृत्व में मंगोलों के आक्रमण ने अलाउद्दीन को एक सुदृढ़ सेना के निर्माण की आवश्यकता को सिद्ध कर दिया, जिसके परिणाम स्वरुप उसके सैनिक प्रशासन के पुनर्गठन पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया।

किलेबन्दी: -

जिस प्रकार सेना साम्राज्य की प्रचीर थी, उसी प्रकार किलेबन्दी सेना की प्रचीर थे। किले, मंगोल आक्रमण के विरुद्ध साम्राज्य की रक्षा में सैनिक चौकियों की भूमिका अदा करते तथा सैनिकों के लिए सुरक्षित निवास स्थान प्रदान करते थे। बरनी लिखता है कि बलबन ने किलों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। मंगोलों के आक्रमण के भय ने अलाउद्दीन को किलेबन्दी की आवश्यकता के प्रति सचेत किया।

सेना: -

सैद्धान्तिक रुप से सभी मुसलमान साम्राज्य की सैनिक सेवा के सदस्य होते थे, व्यवहारिक रुप में केवल पेशेवर सैनिक ही सैन्य सेवा के सदस्य होते थे, जिसमें अनेक वर्गों के सैनिक सम्मिलित होते थे। पहले वह सैनिक होते थे जो सुलतान के अगंरक्षक होते थे, जो सुल्तान के सीधे नियंत्रण में और स्थायी रुप से नियुक्त रहते थे। दूसरे सैनिक वे थे, जो सल्तनत की सेना में स्थायी रुप से नियुक्त थे। तीसरे वे थे, जो प्रान्तपतियों द्वारा स्थायी रुप से रखे जाते थे। चौथे वे सैनिक होते थे, जो युद्ध और सैन्य अभियानों के समय विशेष रुप से भरती किये जाते थे, जो सम्भवतः वेतन के लिए नहीं, केवल लूट के एक अंश के लिए जिहाद में भाग लेते थे।

अलाउद्दीन ने बलबन की अपेक्षा सेना का अधिक केन्द्रीयकरण किया। उसने सेना की सीधी भर्ती की और केन्द्रीय कोष से सैनिकों को नगद वेतन देना प्रारम्भ किया।

शिविर और आयुध: -

अमीर खुसरो सैन्य अभियान के समय खुले मैदान में शिविर स्थापित करने की सामान्य रुप रेखा का वर्णन करता है कि प्रत्येक तुमन को एक हजार दो सौ गज जमीन दी जाती थी; शिविरों द्वारा घिरी सैन्य पड़ाव की कुल परिधि बारह हजार पाँच सौ छियालीस गज थी। युद्ध में सैनिक और उसका घोड़ा दोनों

अच्छी तरह से सुरक्षित रहते थे। घोड़ा इस्पात से और सैनिक कवच एवं शिरस्त्राण से ढके रहते थे। सैनिक के पास दो तलवारें, धनुष-बाण, गदा और कुल्हाड़ीयाँ होती थी। वे हाथी धातु के पत्तरों से आच्छादित रहते थे और पैदल सैनिक कटार और लम्बे धनुष-बाण से सुसज्जित रहते थे। घेरे के यन्त्रों में मंजनीक, अर्रादा और मगरबी होते थे, जो पत्थर और आग फेंकने के काम आते थे।

सेना में मुख्य रुप से घुड़सवार और पैदल सैनिक होते थे तथा युद्ध के समय हाथियों का भी प्रयोग किया जाता था। दीवान-ए-आरिज सैनिकों का हुलिया और नामावली रखता था। अलाउद्दीन ने घोडों को दागने की प्रथा जारी की, जिससे निरीक्षण के समय किसी भी घोड़े को दुबारा प्रस्तुत न किया जा सके या उसके स्थान पर निम्न कोटि का घोड़ा न रखा जा सके। समय-समय पर सेना का कठोर निरीक्षण किया जाता था और घोड़ों, सैनिकों तथा उनके शस्त्रों की बारीकी से जाँच-पड़ताल की जाती थी। अमीर खुसरो का कहना है कि जो सेना बारंगल गयी, उसकी नामावली तैयार करने और निरीक्षण करने में चौदह दिन का समय लगा था।

अलाउद्दीन ने विशाल स्थाई सेना का गठन किया, जिसकी संख्या के बारे में फरिश्ता ने लिखा है कि सुल्तान की सेना में 4,75,000 सुसज्जित और वर्दीधारी घुड़सवार सैनिक थे। दीवान-ए-अर्ज द्वारा यथोचित रुप से निरीक्षण के उपरान्त नियुक्त किये गये सैनिक को सरकारी भाषा में मुर्रत्तब कहा जाता था। मुरत्तब का अर्थ है वह व्यक्ति जिसे वर्गीकृत, क्रमबद्ध, नियमित कर दिया गया हो। यह शब्द मरतबा से लिया गया हो सकता है, वह जिसने स्थान या सम्मान प्राप्त कर लिया हो। सैनिक "मुर्रत्तब" को वेतन सीधे राजकीय कोषागार से दिया जाता था। उसका वेतन सुल्तान द्वारा 234 टंका प्रतिवर्ष निश्चित किया गया था। उसके पास कम से कम एक घोड़ा होता था। यदि उसके पास दो घोड़े होते थे, जो उसकी योग्यता में वृद्धी करते थे, तो उस अतिरिक्त घोड़े के लिए 78 टंका का अतिरिक्त भत्ता मिलता था। इस प्रकार दो घोड़े वाला सैनिक, जिसे सरकारी भाषा में दो अस्पा कहा जाता था, वह 312 टंका (234 + 78 = 312) प्रतिवर्ष वेतन पाता था। एक घोड़े वाले सैनिक को एक अस्पा कहा जाता था। अत: सैनिक को 19 1/2 टंका वेतन प्रति माह मिलता था। इसके अतिरिक्त एक घोड़े के व्यय के लिए 6 1/2 टंका प्रतिमास अधिक मिलते थे। दो से अधिक घोड़े वाले सैनिक को कोई और अतिरिक्त भत्ता नहीं मिलता था। सैनिक का वेतन कम था लेकिन अलाउद्दीन सेना को संतुष्ट रखना चाहता था, परिणामस्वरुप उसने जीवन की आवश्यकताओं को सस्ता किया, बाजार नियंत्रित किया और अन्य बहुत से सुधार किये। जिनसे प्रकट होता है कि सुल्तान महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति और राज्य की सुरक्षा के लिए सेना के कल्याण में बहुत रुचि रखता था।

पुलिस और गुप्तचर: -

अलाउद्दीन ने पुलिस विभाग और गुप्तचर प्रणाली को सक्रिय और प्रभावशाली बनाया। उसने विभाग को ठोस रुप से संगठित किया। इस विभाग का प्रमुख अधिकारी कोतवाल होता था। उसके अधिकार व्यापक तथा पद उत्तरदायित्व पूर्ण होता था। अलाउद्दीन को दिल्ली के कोतवाल अलाउल मुल्क ने ही उसको अव्यवहारिक योजनाओं को त्यागने का सुझाव दिया था और कोतवाल शान्ति व्यवस्था का रक्षक था।

अलाउद्दीन ने पुलिस विभाग में सुधार कर, नये पदों का सृजन किया और उन पर कुशल व्यक्तियों को नियुक्त किया। दीवान-ए-रियासत का नया पद बनाया, जो व्यापारी वर्ग पर नियंत्रण रखता था। शहना या दण्डाधिकारी भी इसी प्रकार के अधिकारी थे। मुहतसिब जन-साधारण के आचार का रक्षक तथा देखभाल करने वाला होता था। वह बाजारों पर भी नियंत्रण रखता था और नाप-तौल का निरीक्षण करने वाला था।

अलाउद्दीन ने गुप्तचर पद्धति को पुन: संगठित किया। पडोसी राज्यो, राज्य परिवारों के सदस्यों, मंत्रियों और असैनिक अधिकारियों तथा जनता के व्यवहार में सुधार होता है, तो इसका श्रेय प्रबल गुप्तचर पद्धति को जाता है जो कि उनमें भय का संचार करती है। इसलिए कि गुप्तचर प्रणाली निरंकुश,

कीमतों को बनाये रखने के लिए अलाउद्दीन ने दलालों और मध्यस्थों से कठोरता का व्यवहार किया। बरनी लिखता है कि उन दिनों दलाल और मध्यस्थ उद्दण्ड और विद्रोही प्रकृति के थे। वे क्रेता और विक्रेता दोनों से कमीशन लेते थे। वास्तव में वे लोग बाजार के राजा थे। उसने दलालों को नियन्त्रित करने के लिए कठोर नियम बनाये और अजीवन कारावास का दण्ड दिया। फरिश्ता का कथन है कि कुछ समय बाद मूल्य स्थिर हो गये।

इसी पद्धति पर दासों और पशुओं की कीमतें भी निश्चित की गई। बरनी के अनुसार, घरेलू काम के लिए दासी 5 से 12 टंके, विषय भोग के लिए दासी 20 से 40 टंके, युवा दास 20 से 30 टंके, अपने काम में दक्ष दास की कीमत 10 से 15 टंके तथा अयोग्य युवक दास 7 से 8 टंके थी। ऐसे ही नियम पशुओं के बाजार में भी लागू किये गये। उत्तम भार वाहक पशु 4 या 5 टंके, दुधारु भैंस 10 से 12 टंके, दुधारु गाय 3 से 4 टंका, मांस के लिए गाय 1 से 2 टंका, भैंस 5 से 6 टंका और मोटी बकरी या भेंड़ 10 से 14 जीतल में बिकती थी।

इन बड़े बाजारों के अतिरिक्त अन्य छोटी वस्तुओं के मूल्य उनकी उत्पादन लागत के आधार पर निश्चित किये गये। बरनी के अनुसार, सुल्तान द्वारा स्वीकृत मूल्य सूची वाणिज्य मन्त्रालय को दे दी गयी। दीवान-ए-रियासत ने विभिन्न बाजारों के लिए शहना नियुक्त किये, जिन्हे बाजारों के लिए दरों की सूची दी जाती थी और वे इन्हे लागू करते थे। अलाउद्दीन ने मूल्य नियंत्रण तथा माप-तौल सम्बन्धी आदेशों के उल्लंघन के लिए कठोर दण्ड देने का आदेश दिया। कठोर नियंत्रण का प्रभाव यह पड़ा कि बाजार व्यवस्थित हो गया।

प्रश्न.2. पानीपत के युद्ध में बाबर की विजय के क्या कारण थे। (2003, 05, 08)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. (1526 ई०) पानीपत के संग्राम में बाबर की विजय उसके श्रेष्ठ सेनापतित्व के कारण हुई। उपयुक्त उदाहरण सहित विवेचना कीजिये। (2011)

प्रश्न. पानीपत (1526 ई०) के संग्राम में लोदी के हार के क्या कारण थे। (2004)

उत्तर. बाबर की सफलता और लोदी की पराजय के कारण: -

पानीपत के संग्राम में बाबर की सफलता और इब्राहीम लोदी की पराजय के अनेक कारण थे। सर्वप्रथम तत्कालीन भारत राजनीतिक दृष्टि से विभक्त था। यद्यपि दिल्ली और आगरा में अफगानों की सत्ता थी, परन्तु विहार में लोहनी वंश के अफगान, पंजाब में दौलत खाँ लोदी, गुजरात, मालवा और बंगाल के अफगान सरदार अपने स्वार्थों और राज्य विस्तार की भावना के कारण उनमें परस्पर एकता का आभाव था। इसके साथ ही लोदी की अफगान सरदारों के प्रति अविश्वास पूर्ण नीति के कारण से अफगान सरदारों और जनता के सहयोग के बिना अकेले ही युद्ध करना उसकी पराजय का प्रमुख राजनीतिक कारण था।

दूसरे, इब्राहिम लोदी की सेना सामन्तीय पद्धति पर एकत्रित की गई थी। अत: उसके सैनिकों और सरदारों में परस्पर एकता, मिलकर युद्ध करने की योग्यता, अनुभव, उत्साह और लादी के लक्ष्य के प्रति कोई उत्साह नहीं था। इतना ही नहीं लोदी के सरदार क्षुब्ध और असंतोष की भावना से ग्रस्त थे। इस कारण व्यक्तिगत साहस और शौर्य के होते हुए भी लोदी के सैनिक बाबर के सैनिकों की तुलना में दुर्बल थे। जैसा कि बाबर ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है कि भारतीय सैनिक मरना जानते है, युद्ध करना नहीं। दूसरी ओर बाबर के सैनिक अच्छी तरह प्रशिक्षित एवं संगठित थे। उनकी सेना विभिन्न छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त होने के कारण उनमें गतिशीलता व परस्पर ताल-मेल मिलकर युद्ध लड़ने का अनुभव था तथा उनमें भारत में विजय प्राप्त करने और साम्राज्य स्थापित करने के बाबर के लक्ष्य के प्रति लगाव था।

तीसरे तत्कालीन भारतीय शासक बारुद और विस्फोट आयुधों से तो परिचित थे, परन्तु आयुधों के रुप में इनका युद्ध क्षेत्र में प्रयोग नहीं करते है। इसी कारण इब्राहिम लोदी की सेना में तोपखाने और मस्केटों

का कोई दल नहीं था। जबकि बाबर मस्केटें थी, जिनका प्रयोग उसने कु कुली नामक दो तुर्क तोपचियों की से निर्णायक सफलता के कारणों में से

चौथे, इब्राहीम लोदी की जब लोदी की सेना चारों तरफ घिर धनुर्धरों ने हाथियों के महावतों को म अपनी ही सेना को रौंदते हुए भाग योगदान नहीं किया।

पाँचवे, इब्राहिम लोदी जन्मजात नहीं बल्कि अनुभव जनित मंगोलों और अफगानों से शत्रु को का प्रयोग तथा बैलगाड़ियों को गील युद्ध कलाओं का सम्मिलित रुप कुशलतापूर्वक प्रयोग किया। इस एक अनुभवहीन बहादुर युवक था

इस प्रकार बाबर की प्रमुख भूमिका अदा की।

प्रश्न.3. खानवा के संग्राम

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. खानवा के संग्राम

प्रश्न. खानवा के संग्राम

उत्तर. खनवा का संग्राम:

पानीपत

शक्ति को पराजित करना था, वे थे सरदार महमूद लोदी, हसन खाँ राणा संग्राम सिंह जो राणा सांगा उन्होने बाबर को भारत से निकाल कई स्थानों पर अधिकार कर लि सांगा का स्वागत किया और इस राणा के पास चितौड़, रणथम्भौ राजाओं को युद्ध का निमंत्रण भेज 1527 को राणा सांगा खनवा प ग्रहण कर ली।

इस बीच बाबर को एकत्र किया और 12 मार्च को बीच की दूरी लगभग 4 मील

इस समय बाबर के सांगा के पास कुल दो लाख के

का कोई दल नहीं था। जबकि बाबर की सेना में तोपखाने का एक शक्तिशाली दल था जिसमें बड़ी तोपें और मस्केटें थी, जिनका प्रयोग उसने कुस्तुनतुनिया के तुर्कों से सीखा था तथा उसे मुस्तफा और उस्ताद अली कुली नामक दो तुर्क तोपचियों की सेवायें प्राप्त थी। पानीपत के संग्राम में बाबर की अभूतपूर्व सफलता और निर्णायक सफलता के कारणों में से सबसे महत्वपूर्ण भूमिका तोपखाने ने अदा की।

चौथे, इब्राहीम लोदी की सेना मे 1000 हाथी सेना के अग्र भाग रुप में तैनात थे। युद्ध के दौरान जब लोदी की सेना चारों तरफ घिर गयी और उनके विरुध तोपों, धर्नुधर अश्वारोहियों का प्रयोग हुआ, तो धनुर्धरों ने हाथियों के महावतों को मार दिया और तोपखानों की धमाके की आवाज से हाथी अनियंत्रित होकर अपनी ही सेना को रौदते हुए भाग खड़े हुए। अत: सेना के अंग रुप में हाथियों ने लोदी की पराजय में कम योगदान नहीं किया।

पाँचवे, इब्राहिम लोदी की तुलना में बाबर एक योग्य सेनापति था। उसकी सैनिक प्रतिभा जन्मजात नहीं बल्कि अनुभव जनित थी। मध्य एशिया में लड़ते हुए बाबर ने उजबेगों से तुलगमा का प्रयोग, मंगोलों और अफगानों से शत्रु को लालच देकर फँसाने और फिर उन पर प्रत्याक्रमण करना, तुर्कों से तोपों का प्रयोग तथा बैलगाड़ियों को गीली खाल के रस्सों में बाँधकर व्यूह रचना का प्रयोग भी सीखा। इन समस्त युद्ध कलाओं का सम्मिलित रुप आक्रमणात्मक-रक्षात्मक युद्धकला के रुप में उसने पानीपत के मैदान में कुशलतापूर्वक प्रयोग किया। इस प्रकार बाबर की सैन्य प्रतिभा अनुभव जनित थी। जबकि इब्राहिम लोदी एक अनुभवहीन बहादुर युवक था।

इस प्रकार बाबर की सफलता में तोपखाने, तुलगमा रणनीति और उसके योग्य सेनापतित्व ने प्रमुख भूमिका अदा की।

प्रश्न.3. खानवा के संग्राम पर संक्षिप्त विवरण लिखिए। (2003)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. खानवा के संग्राम में बाबर के विजय के क्या कारण थे?(2013, 10, 06, 05, 04)

प्रश्न. खानवा के संग्राम में राणा सांगा की पराजय के क्या कारण थे? (2007)

उत्तर. खनवा का संग्राम: -

पानीपत के प्रथम संग्राम के उपरांत बाबर के लिए जिस दूसरी भारतीय राजनीतिक शक्ति को पराजित करना था, वे थे राजपूत। राजपूतों ने अफगानों के साथ समझौता कर लिया और अफगान सरदार महमूद लोदी, हसन खाँ सेवाती आदि राजपूत सरदार राणा संग्राम सिंह के साथ हो गये। मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह जो राणा सांगा के नाम से प्रसिद्ध थे उस समय उत्तर भारत के सबसे शक्तिशाली योद्धा थे। उन्होने बाबर को भारत से निकालने का बीड़ा उठाया। पानीपत के युद्ध के बाद राणा सांगा ने राजपूताने में कई स्थानों पर अधिकार कर लिया और आगरे की ओर बढ़ा। रणथम्भौर के राव मानिकचंद चौहान ने राणा सांगा का स्वागत किया और इसके बाद फरवरी 1527 को राणा सांगा ने बयान का किला जीत लिया। अब राणा के पास चितौड़, रणथम्भौर, कन्दार, बयान आदि प्रमुख किले थे। इस बीच राणा ने अनेक राजपूत राजाओं को युद्ध का निमंत्रण भेजा और वे सभी राणा सांगा के नेतृत्व मे बाबर के विरुद्ध एकत्र हुए। 13 मार्च 1527 को राणा सांगा खनवा पहुँचे तथा 17 मार्च 1527 को खनवा गाँव के पास सांगा ने युद्ध की स्थिति ग्रहण कर ली।

इस बीच बाबर को जब राणा सांगा की गतिविधियों का पता चला तो उसने अपनी सेनाओं को एकत्र किया और 12 मार्च को खनवा के पास अपना पड़ाव डाल दिया। बाबर और राणा सांगा के पड़ाव की बीच की दूरी लगभग 4 मील की थी। बाबर ने क्षेत्र का सर्वेक्षण अपनी स्थिती ग्रहण कर की।

इस समय बाबर के पास 30,000 अश्वरोही सैनिक, तोपें और मस्केटधारी सैनिक भी थे। राणा सांगा के पास कुल दो लाख के लगभग सैनिक तथा एक हजार हाथी थे।

बाबर ने अपनी बैलगाड़ियों को जिनकी संख्या लगभग 1000 थी, लोहे की चेन से बाँधकर इ प्रकार से रखा कि दो बैलगाड़ियों के समूह के बीच इतना स्थान था कि लगभग 100 सैनिक निकल सकें बैलगाड़ियों के बीच पहियेदार तिपाये लगे थे जिनके पीछे मस्केटधारी सैनिक खड़े होते थे। इन बैलगाड़ि के पीछे तोपें लगी हुई थी। दोनों पार्श्वों पर खाइयाँ खोदी गई तथा उन स्थानों पर जहाँ पर तोपों द्वारा सुर नहीं थी, खाइयाँ खोद दी गयी। दाहिने पार्श्व पर मुस्तफा, मस्केट्स तथा तोप के साथ तैनात था, जबकि उस्ताद अली कुली केन्द्र में अपनी तोपों के साथ स्थिति ग्रहण किये हुए था। इन सबके पीछे बाबर अपनी से को सात भाग में विभक्त कर लगाया हुआ था। दोनों पार्श्वों में तुलगमा टुकड़ियाँ तैनात थी।

सभी रक्षात्मक तैयारी पूरी कर लेने के बाद बाबर के सैनिकों के पास राणा सांगा के सम्बन्धि ऐसी सूचनाएं मिल रही थी, जिससे उनका मनोबल गिरता जा रहा था। बाबर ने अपने सैनिकों को प कुरान की शपथ दिला कर उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित किया था।

इसके विपरीत राणा सांगा ने अपनी सेना में अग्र भाग में हाथियों को लगाया था और उसके पी राजपूतों की सम्पूर्ण सेना चार भागों में बँटकर खड़ी थी।

17 मार्च 1527 को प्रात: सूर्योदय के लगभग तीन घंटे बाद युद्ध प्रारम्भ हुआ। राजपूतों के भाग ने बाबर के दायें पार्श्व पर आक्रमण किया। बाबर का दाहिना भाग कमजोर पड़ा। बाबर ने दाहिने प की सहायता के लिए कुमुक भेजी जिसने आगे बढ़कर जब राजपूतों के बायें भाग पर आक्रमण किया राजपूतों के बायें भाग तथा केंद्र के बीच एक रिक्त स्थान बन गया। इस समय बाबर की तोपों से राजपूतों प गोले बरसाये जा रहे थे। मुस्तफा अपनी छोटी तोपों और मस्केटों को तिपायों की सहायता से आगे ले आ और राजपूतों पर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। जिससे राजपूतों के केन्द्र में अव्यवस्था फैल गयी। राजपूतों बाबर के बायें भाग पर आक्रमण किया और युद्ध एक सामान्य युद्ध में बदल गया।

राजपूत मुगलों की तोपों की मार के सामने टिक नहीं पा रहे थे। बाबर की तोपें आगे आई औ इसके साथ ही बाबर के व्यक्तिगत नेतृत्व में राजपूतों पर जोरदार हमला हुआ। राणा सांगा स्वयं युद्ध में आ थे और वे अपनी सेना को बाबर पर आक्रमण करने का आदेश निरन्तर दे रहे थे। इसी समय राणा सां घायल हो गये और उन्हें राजपूत मैदान से बाहर ले गये। शीघ्र ही राजपूतों को राणा के मैदान बाहर होने की सूचना मिली और राजपूत मैदान छोड़ कर भाग गये। बाबर की सेना ने राजपूतों का पीछा किया। सायंकाल तक युद्ध समाप्त हो गया।

खनवा के युद्ध में बाबर की विजय के साथ ही जहाँ एक ओर मुगलों का भारत में साम्राज्य स्थापित हो गया। वहीं दूसरी ओर राजपूतों का भारत में साम्राज्य स्थापना का स्वप्न टूट गया। यद्यपि राजपू बहुत वीरता से लड़े, शायद ही कोई राजपूत घराना रहा हो जिसका कोई न कोई राजकुमार इस युद्ध में काम न आया हो। परन्तु इसके साथ ही साथ राजपूत युद्ध कला की कमजोरियाँ भी उजागर हो गई और यह सिद्ध हो गया कि बाबर द्वारा लाई गई मुगल युद्ध कला राजपूत युद्ध कला से अधिक श्रेष्ठ थी।

पराजय के कारण: -

खानवा के युद्ध में बाबर की सफलता श्रेष्ठ सेनाप्रतित्व, श्रेष्ठ युद्ध नीति, श्रेष्ठ सैन्य संचालन, अवसर के अनुकूल साहस और तोपखाने के कारण प्राप्त हुई। खानवा के संग्राम में राजपूतों की पराजय के कारण बाबर के श्रेष्ठ सेनापतित्व था। बाबर ने युद्ध से पूर्व अपने सैनिकों का मनोबल रखने के लिए उन्हें कुरान की शपथ दिलायी और राजपूतों के विरुध युद्ध को जिहाद घोषित कर दिया। जिससे बाबर के सभी सैनिकों और सरदारों ने कुरान पर हाथ रखकर मरते दम तक युद्ध करने की शपथ ली थी। इनके साथ ही बाबर अपनी सेना को सात भागों में विभक्त कर खानवा के मैदान में तैनात किया और आवश्यक्तानुसार उन्हें समय-समय पर प्रयोग किया। जब राजपूतों ने बाबर के दायें पार्श्व पर आक्रमण किया तो बाबर ने दायें पार्श्व की सहायता के लिए तत्काल टुकड़ी भेजी। इस प्रकार हम कह सकते है कि बाबर राणा सांगा की तुलना में कहीं बेहतर सेनापति था। जबकि राणा सांगा के घायल होने के बाद राजपूत सेना को योग्य नेतृत्व नहीं

प्रतिनिधी छोड़ दिया करते थे। यह प्रतिनिधी साधारणतया ऐसा व्यक्ति हुआ करता था जो स्वतन्त्र रुप से उस पद को प्राप्त नहीं कर सकता था। इसलिए कोई उच्चतर राज्य सेवक जो स्वतन्त्र रुप से उस पद को प्राप्त किये होता, वह अनुभव करता था कि पदोन्नति के वैध अवसर उससे छीन लिए गये है। उधर कृपा प्राप्त मनसबदार के प्रतिनिधी के पास पहलशक्ति का आभाव था और उसे अपने प्रवर अधिकारी से आदेश लेने पड़ते थे।

औरगंजेब ने साम्राज्य की सैनिक कठिनाइयों में एक और योगदान किया। वह अकबर की भाँति युद्ध क्षेत्र में से युद्ध का संचान नही करना चाहता था वरन् कुछ दूरी से ही वह युद्ध निर्देश करना चाहता था। इससे युद्ध स्थल में उपस्थित सेनापतियों की पहल शक्ति और दायित्व भावना समाप्त हो जाती थी। राजपूताना अभियान सम्भवत: इस तथ्य का पूर्णतया इसलिए स्पष्ट करता है कि हमें ऐसे अनेक पत्र उपलब्ध है जिनका आदान प्रदान औरंगजेब और उसके सेनापतियों में हुआ था। औरंगजेब मेवाड़ में शत्रु के देश में अग्रसर होने का सुझाव देता है। परन्तु सेनापति इसके विरुद्ध साधनाभाव का तर्क प्रस्तुत करता है।

प्रश्न.6. 1761 का पानीपत का संग्राम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (2003)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. 1761 (पानीपत) में मराठों के हार के क्या कारण थे? (2004, 05, 06, 08)

प्रश्न. शिवाजी के बाद मराठा सैन्य पद्धति की क्या कमजोरियाँ थीं? (2007)

प्रश्न. पानीपत के तृतीय युद्ध (1761) में मराठों की पराजय के कारणों की विवेचना कीजिये। (2010)

प्रश्न. शिवाजी का सेना के प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिये। (2012)

प्रश्न. शिवाजी के काल में मराठों की पैदल तथा घुड़सवारों के संघटन की विवेचना कीजिये। (2013)

प्रश्न. पानीपत के तृतीय युद्ध में अफगानों की विजय के क्या कारण थे। (2007)

प्रश्न. शिवाजी के आधीन नौ सेना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (2005, 07, 08)

प्रश्न. शिवाजी की सामरिकी पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए। (2008)

प्रश्न. शिवाजी के आधीन दुर्ग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (2013)

उत्तर. मराठा सैन्य संगठन: -

शिवाजी की मराठा सैन्य पद्धति को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है

मराठा पैदल सेना - प्रारम्भिक काल में शिवाजी की पैदल सेना घाटमाला के मवाले लोगों को एकत्र करके बनायी गयी थी। ये मावले लोग अपने हथियार स्वयं लाते थे। उनके पास तलवार, ढाल, धनुष-बाण, भाले, छूरे तथा कभी कभी मैचलाक (तोड़दार बन्दूक) भी होती थी। उन्हें राज्य की ओर से बारुद मिलता था परन्तु ये मराठे आग्नेय अस्त्रों पर अधिक विश्वास नहीं करते थे।

शिवाजी को सैन्य संगठन का अच्छा ज्ञान था और उनके विचार तात्कालिक परिस्थितियों में अत्यन्त स्पष्ट थे। सैनिक का चयन व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर किया जाता था। सैनिकों की भरती शिवाजी द्वारा स्वयं निरीक्षण किये जाने के बाद की जाती थी। प्रत्येक नये सैनिक को पहले सेवा कर रहे व्यक्तियों में से किसी की जमानत देनी पड़ती थी, जिससे नये सैनिक पर विश्वास किया जा सके।

युद्ध के समय सैन्य संचालन को गतिशील तथा प्रभावकारी बनाने के लिए सेना को छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभाजित किया गया। पैदल सेना में प्रत्येक 10 सैनिक पर एक नायक, 5 नायकों पर एक हवलदार, 2 या 3 हवलदारों पर जुमलादार, 10 जुमलादारों पर एक हजारी तथा 7 हजारी सरनोबत के आधीन कार्य करते थे। प्रत्येक जुमलार और हजारी के आधीन एक गैर सैनिक सहायक होता था जिसे सबनीस कहते थे।

अश्वरोही सेना - अश्वरोही सेना में दो प्रकार के सैनिक होते थे - बारगीर और सिल्हेदार। बारगीर सैनिक

वे सैनिक होते थे जिसको राज्य की ओ
सैनिक वे होते थे जो अपना घोड़ा स्व
कार्य करते थे। यह अश्वरोही सेना व
आधीन कार्य करते थी। 10 जुमलदा
करता था। यह पंचहजारी एक सरनो
जुमलदार की सहायता के लिए एक
एक मजुमदार, एक मराठा कारवारी
था। सरनोवत हरकारे तथा गुप्तचर
फैरियर होता था।

एक घुड़सवार अधिक
बना कवच पहनते थे। ये अपने स
भाला, ढाल तथा कुछ मैचलाक
तोपखाना - शिवाजी के सेना
दारुखाना कहा गया है। शिवाजी
तोपों एवं गोला बारुद के लिए यु
बारुद बेचते थे। शिवाजी के काल
होने के कारण मुख्यत: किलों क
दुर्ग - शिवाजी की सैन्य व्यवस
किलों की सहायता से निर्मित कि
में जीत कर प्राप्त किया था। शि
किलों में प्रवेश का मार्ग केवल
से घिरे थे तथा अकेली पहाड़ी
गिराया जाता था। किलों में पय
और तालाब होते थे। इसके अ
किया जाता था।

शिवाजी का विच
षड़यन्त्रों के केन्द्र भी हो सकते
अथवा किले की तरह घर बन
की थी जो हवलदार, सबनी
आपस में स्वतंत्र थे तथा कि

शिवाजी दुर्ग के
सरनोबत को एक मराठा त
जी ने यह पद्धति इसलिए
अधिकारियों का एक दुर्ग
और मैचलाक भी होते थे
नौ सेना - शिवाजी को
सेना के महत्व को समझा
भी समझा। कोंकण का
था। उन्होंने एक बड़ी नौ
क्षेत्र के लोगों को नौ सेन

वे सैनिक होते थे जिसको राज्य की ओर से घोड़ा प्राप्त होता था। इन्हें पागा सैनिक भी कहते थे। सिल्हेदार सैनिक वे होते थे जो अपना घोड़ा स्वयं लाते थे। प्रत्येक 5 बारगीर सैनिक एक हवलदार के आधीन हो कर कार्य करते थे। यह अश्वरोही सेना की सबसे छोटी इकाई थी। 5 हवलदारों की टुकड़ियाँ एक जुमलदार के आधीन कार्य करते थी। 10 जुमलदार एक हजारी के आधीन तथा 5 हजारी एक पँच हजारी के आधीन कार्य करता था। यह पंचहजारी एक सरनोबत के आधीन होता था, जो केवल राजा के आधीन होता था। प्रत्येक जुमलदार की सहायता के लिए एक मजुमदार होता था। प्रत्येक हजारी तथा पंचहजारी की सहायता के लिए एक मजुमदार, एक मराठा कारवारी, एक प्रभु कायस्थ जमनीस तथा लेखन कार्य के लिए कारकूइस होता था। सरनोवत हरकारे तथा गुप्तचर भी नियुक्त करते थे। प्रत्येक 25 घोड़ों के लिए एक पानीवाला तथा एक फैरियर होता था।

एक घुड़सवार अधिकारी सर पर लोहे का टोप तथा लोहे की चेन का सुरक्षा कवच तथा रुई का बना कवच पहनते थे। ये अपने साथ कई दिनों का सूखा भोजन भी रखते थे। घुड़सवार सैनिक तलवार, भाला, ढाल तथा कुछ मैचलाक भी रखते थे। ये सैनिक अपने भाले का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते थे।

तोपखाना - शिवाजी के सेना में तोपखाने का विभाग भी था। जिसे मराठा इतिहास के संदर्भ ग्रन्थों में दारुखाना कहा गया है। शिवाजी ने आग्नेयास्त्रों को निर्मित करने का कोई कारखाना नहीं लगाया तथा वे तोपों एवं गोला बारुद के लिए यूरोपीय व्यापारियों पर निर्भर रहते थे जो उन्हें द्वितीय श्रेणी की तोपें तथा गोला बारुद बेचते थे। शिवाजी के काल में मराठा सेना में तोपखाने का अधिक विकास नहीं हो पाया। तोपें गतिहीन होने के कारण मुख्यत: किलों की रक्षा के लिए प्रयुक्त की जाती थी।

दुर्ग - शिवाजी की सैन्य व्यवस्था में दुर्गों का विशेष महत्व था। वास्तव में शिवाजी ने मराठा साम्राज्य को किलों की सहायता से निर्मित किया। शिवाजी ने कुछ किलों का स्वयं निर्माण कराया था तथा कुछ को युद्ध में जीत कर प्राप्त किया था। शिवाजी ने इन किलों हेतु स्थान का चयन बहुत सोच-विचार कर किया था। कुछ किलों में प्रवेश का मार्ग केवल एक पतली टेढ़ी-मेढ़ी सड़क ही थी। कुछ किले ऊँची-ऊँची चट्टानों की दीवारों से घिरे थे तथा अकेली पहाड़ी पर थे। प्रत्येक किले में बड़े-बड़े पत्थर रखे जाते थे, जिन्हें शत्रु पर ऊपर से गिराया जाता था। किलों में पर्याप्त मात्रा में जल संग्रह किया जाता था। बड़े-बड़े किलों में एक से अधिक कुएँ और तालाब होते थे। इसके अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा में खाद्यान, सैनिक तथा अन्य साजो-सामान का संग्रह किया जाता था।

शिवाजी का विचार था कि दुर्ग जहाँ एक ओर राजा को सुरक्षा प्रदान करते वहीं दूसरी ओर षड़यन्त्रों के केन्द्र भी हो सकते है। अत: शिवाजी के काल में राजा के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को किले रखने अथवा किले की तरह घर बनवाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। दुर्ग में किसी भी दुर्ग अधिकारियों की नियुक्ति की थी जो हवलदार, सबनीस तथा सरनोबत कहलाते थे। ये तीनों अधिकारी पद में समान होते हुए भी आपस में स्वतंत्र थे तथा किले का प्रशासन तीनों के एक मत होने पर ही चलता था।

शिवाजी दुर्ग के अधिकारियों की नियुक्ति में विशेष ध्यान देते थे। उनके अनुसार हवलदार और सरनोबत को एक मराठा तथा सबनीस को ब्राहमण और कारकूइस को कायस्थ प्रभु होना चाहिये। शिवाजी जी ने यह पद्धति इसलिए बनायी थी कि तीनों अधिकारी कभी भी एक मत होकर षड़यंत्र न कर सके। इन अधिकारियों का एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में स्थानान्तरण भी होता था। दुर्ग के सैनिक के पास भाले, तलवार और मैचलाक भी होते थे। कुछ किलों में विदेशियों से क्रय की गई तोप भी लगी होती थी।

नौ सेना - शिवाजी को मराठा नौ सेना का जनक भी कहा जाता है। शिवाजी प्रथम मराठा थे, जिन्होने नौ सेना के महत्व को समझा तथा दूसरी ओर राज्य के विकास एवं आर्थिक समृद्धि में बन्दरगाहों के महत्व को भी समझा। कोंकण का समुद्री तट क्षेत्र नौ सेना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता था। उन्होंने एक बड़ी नौ सेना विकसित की थी, जिसमें लगभग 700 छोटे-बड़े जहाज थे। उन्होने कोंकण क्षेत्र के लोगों को नौ सेना में भर्ती किया। परन्तु नौ सेना में अधिकारी वर्ग सामान्यत: मुसलमान ही था तथा

कुछ यूरोपीय भी थे, जो अच्छे तोपची समझे जाते थे। शिवाजी ने अनेक समुद्री दुर्गों का भी निर्माण क

सेना का प्रयाण - शिवाजी की सेना हल्की होने के कारण बहुत तीव्रगति से आगे बढ़ती थी। वे प्रयाण के समय जमीन पर सोते थे। सेना के साथ कोई लाव लश्कर नहीं था। सैनिक अपने घोड़े की ढीली कर हाथ में बाँध कर सो जाते थे। किसी भी प्रकार का वैभव प्रदर्शन नहीं होता था। सूरत पर के समय शिवाजी की सेना में कोई तम्बू नहीं था और शिवाजी खुले मैदान में जमीन पर बैठते थे। सेना एक बार में लगभग 5 मील की यात्रा तय करती थी।

वित्त व्यवस्था - शिवाजी ने रोमन लोगों की विचारधारा को ही अपनाया था कि युद्ध का व्यय युद्ध प्राप्त किया जाय। शिवाजी को मराठा राज्य और सेना के निर्माण के लिए धन की आवश्यकता थी। उन्होंने अपनी प्रजा पर दो प्रकार के कर लगाये चौथ और सरदेशमुखी। जनता को अपनी आय का भाग चौथ के कर के रुप में देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त 1/10 भाग सरदेशमुखी के रुप में

प्रशासन - शिवाजी का प्रशासन आठ मन्त्रियों द्वारा, जो कि अष्ट प्रधान कहलाते थे, चलाया जाता ये अष्ट प्रधान निम्न थे - पेशवा- आमात्य, सचिव, मंत्री, सेनापति, सुमन्त, पंडित राव एवं न्यायाधीश सेनापति और मंत्री को छोड़कर सभी ब्राहमण होते थे। पंडित राव तथा न्यायाधीश को छोड़कर सभी के नेतृत्व करते थे। अष्ट प्रधान केवल शिवाजी के सचिवों के रुप में कार्य करते थे। शिवाजी उनकी के लिए बाध्य नहीं थे। अत: वे न तो आगे बढ़कर कोई काम कर सकते थे और न ही नीति निर्धारण सकते थे। उनका कार्य शुद्ध रुप से सलाहकार का था। वास्तव में उनका कार्य शिवाजी के निर्देशों पालन करना और अपने विभागों की देख-भाल करना था।

शिवाजी जी की सामरिकी: -

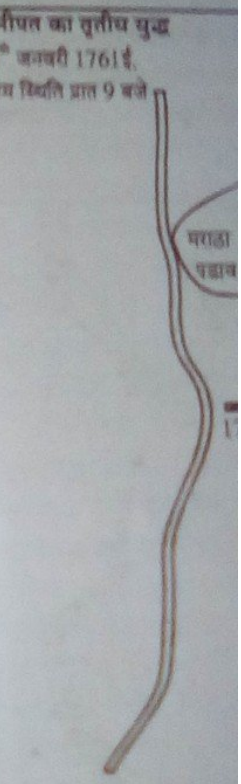
शिवाजी एक हिन्दु राष्ट्र की कल्पना करते थे और उसकी स्थापना करना चाहते थे और इस लिये उन्हे मुगलों से मोर्चा लेना था। चूंकि शिवाजी के पास मुगलों के समान बड़ी सेना तथा संसाधन उपलब्ध नहीं थे। अत: मुगलों से मैदानी युद्ध नहीं कर सकते थे। ऐसी परिस्थिति में उन्हें एक समरतन्त्र की आवश्यकता थी जो कि उनके सीमित संसाधनों के अनुकूल हो तथा साथ ही साथ इस उद्देश्य की पूर्ति भी कर सके। शिवाजी ने जो समरतन्त्र अपनाया वह 'गनिमी कावा' कहलाता था अर्थात छापामार युद्ध। शिवाजी ने अपने इस छापामार युद्ध पद्धति में गति के विशेष महत्व को समझा। इस में मराठा क्षेत्र की भू-रचना ने तथा उस क्षेत्र के मावले जाति के लोगों ने जो कि वहाँ की चप्पा, चप्पा परिचित थे, अहम भूमिका अदा की। ये मावले पैदल सैनिक एक बार में 40 से 50 मील की दूरी तय कर थे। शत्रु की संचार व्यवस्था को काटना, रात में आक्रमण करना तथा तेजी से शत्रु पर आक्रमण कर जाने में विशेष योग्यता रखते थे। इस युद्ध कला में शिवाजी के किले जहाँ एक ओर उनके सैनिकों संरक्षण प्रदान करते थे, वही दूसरी ओर शत्रु की गति विधियों पर नजर भी रखते थे।

पानीपत का तृतीय संग्राम: -

शिवाजी की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी अयोग्य निकले और शीघ्र ही मराठा राज्य की वास्तविक सत्ता पेशवा के हाथों में चली गई। पेशवाओं ने मराठा राज्य से बाहर अपनी सैनिक कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की और धीरे-धीरे दिल्ली की राजनीति में उनका पदार्पण हो गया। इनके साथ ही साथ मराठा छापामार युद्धकला जिनमें वे अत्यंत कुशल थे, को छोड़कर मैदानी युद्ध करने लगे और मराठा सेना का स्वरुप मुगल सेना के समान हो गया। 18वीं शताब्दी के मध्य तक मराठा सेना एक चलता फिरता शहर हो गयी थी।

पृष्ठभूमि - 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य के विघटन की प्रकिया प्रारम्भ हो गयी और उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इसके बाद से जितने भी मुगल बादशाह हुए वे दरबारियों के हाथ की कठपुतली ही हुए और मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा दिन प्रतिदिन गिरती ही चली गयी। मुगल साम्राज्य को एक गहरा झटका तब लगा, जब 1739 में नादिर शाह का आक्रमण हुआ,

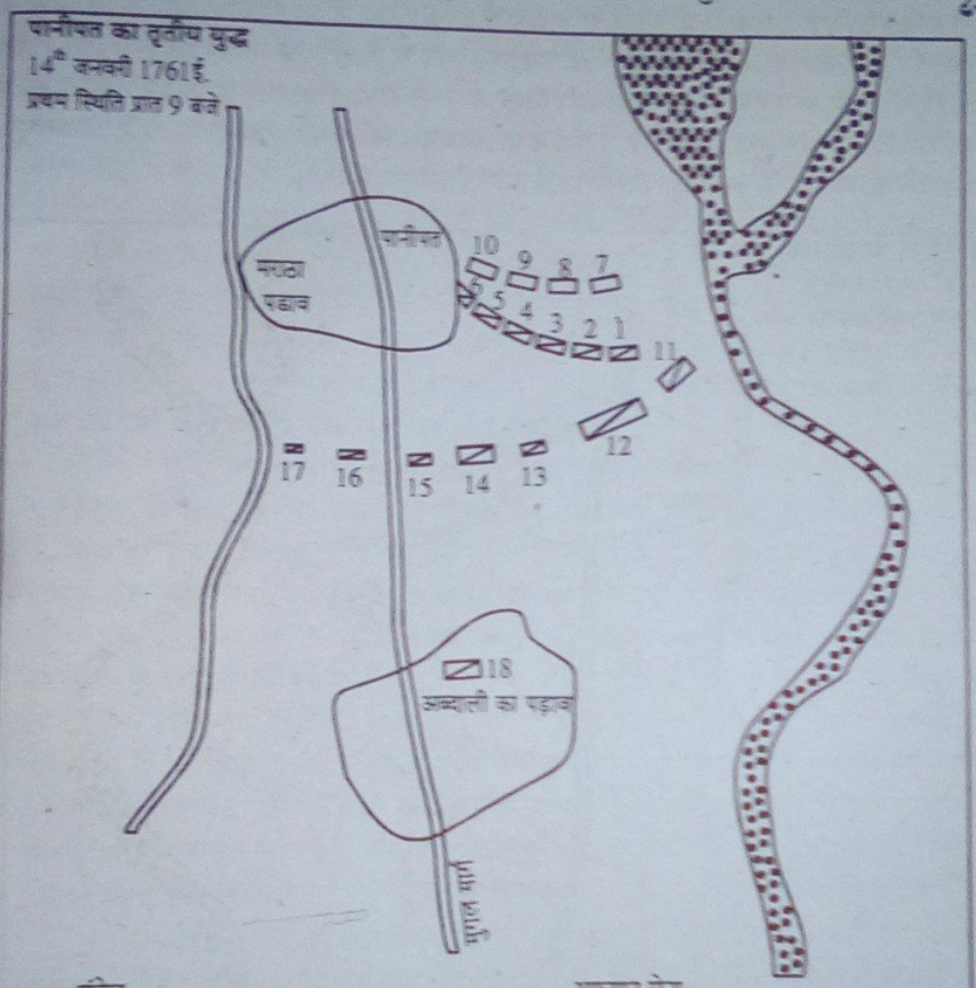
जिसने मुगल साम्राज्य की नींव हि
अब्दाली उसका उत्तराधिकारी हुआ
पराजित हुआ और इसके उपरान्त



संकेत -
मराठा सेना -
1. इब्राहिम खाँ गर्दी
2. दामाजी गायकवा
3. भाऊ और विश्वा
4. आन्ताजी मनकेश्
जसवन्त राव पवार
5. जनकोजी सिंधि
6. मल्हार राव होल
7, 8, 9. मराठा प
10. बाजार

इस बीच मरा
का मुगल साम्राज्य में ह
किया। 1750 में अब्दाली
1756 में मुगलों ने पंजा
आक्रमण किया और 20

जिसने मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी। 1747 में नादिर शाह की हत्या के बाद के बाद अहमद शाह अब्दाली उसका उत्तराधिकारी हुआ। जनवरी 1749 में अब्दाली ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया, परन्तु पराजित हुआ और इसके उपरान्त उसके आक्रमणों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ।



संकेत -

मराठा सेना -

1. इब्राहिम खाँ गर्दी
2. दामाजी गायकवराड, विट्ठल शिवदेव
3. धाऊ और विश्वास राव
4. आन्ताजी मनकेश्वर, सतवाजी जाधव
जसवन्त राव पवार और शमशेर बहादुर
5. जनकोजी सिंधिया
6. मल्हार राव होल्कर
7, 8, 9. मराठा पड़ाव के अनुचर
10. बाजार

अफगान सेना -

11. बरखुर्दार खाँन और अमीर बेग
12. हाफिज रहमत खाँन डुण्डी खाँन
13. अहमद खाँ बंगश
14. शाह वली खाँन
15. शुजाउद्दौला
16. नजीबुद्दौला
17. शाह पसन्द खाँ
18. आरक्षित और अब्दाली का पड़ाव

इस बीच मराठों ने मुगल की अस्थिरता का लाभ उठाया और 1714 की सन्धि के द्वारा मराठों का मुगल साम्राज्य में हस्तक्षेप प्रारम्भ हो गया। मराठों ने उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार प्रारम्भ किया। 1750 में अब्दाली ने पंजाब पर अपना नियंत्रण किया और 1751 में कश्मीर पर कब्जा कर लिया। 1756 में मुगलों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया, जिसके फलस्वरुप अब्दाली ने 1756 में भारत पुन: आक्रमण किया और 20 दिसम्बर को लाहौर पहुँचा। 23 जनवरी 1757 को वह दिल्ली पहुँचा और दिल्ली

(iv) सीमित साधन -

संसाधनों की कमी क्रांतिकारियों की विफलता का प्रमुख कारण बनी। भारतीय विद्रोहियों के पास बन्दूकें बहुत थोड़ी थी और वे प्राय: तलवारों, भालों और लाठियों से लड़े। नये हथियार और गोलाबारुद हासिल करने का उनके पास कोई स्रोत नहीं था। उनका सामना एक ऐसे शत्रु से था, जिनके पास आधुनिकतम शस्त्रास्त्र थे। इसके अलावा विद्रोहियों के पास कोई संचार व्यवस्था नहीं थी, जिससे वे अपने कार्यकलापों में तालमेल स्थापित कर सकें। यातायात के साधन केवल अंग्रेजों को ही उपलब्ध थे, जिसकी सहायता से उन्होने अपने सैनिक, शस्त्र, रसद एवं सूचनाएं तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सफल हुए। जबकि विद्रोही एक दूसरे की सहायता न कर पाने के कारण अकेले ही लड़े।

जहाँ भारत में अंग्रजों को लगातार ब्रिटेन से अनुशासित जवान, आवश्यक धन एवं युद्ध सामग्री प्राप्त होती रही, वहीं विद्रोहियों में केन्द्रीय नियन्त्रण का आभाव रहा। सिर्फ आधे अधूरे साहस से ही शक्तिशाली शत्रु को, जिसने अपनी युद्ध कुशलता से नियोजित की हो, को पराजित नहीं किया जा सकता था। अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता देखकर अधिकांश भारतीय सिपाही धीरे-धीरे अपने गाँव लौट गये। जबकि अंग्रेजों की भारत पर अधिकार बनाये रखने की दृढ़ इच्छा शक्ति ने सारे साम्राज्य के साधनों का प्रयोग किया। 1 लाख 12 हजार अंग्रेज सैनिक संसार के विभिन्न भागों से भारत भेजे गये तथा तीन लाख दस हजार भारत में ही भर्ती किये गये।

इसके अतिरिक्त विद्रोहियों ने दिल्ली के महत्व को नहीं समझा। दिल्ली शक्ति की रीढ़ और भारत पर शासन का केंद्र थी। अंग्रेज इस मनोविज्ञान को समझते थे। अत: उन्होने अपनी सैनिक टुकड़ियों को भेजकर दिल्ली को घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के बाहर के विद्रोहियों को चाहिये कि वे अंग्रेजों को ऐसा करने से रोकते। विद्वानों का ऐसा मानना है कि दिल्ली के बाद कलकत्ता की ओर प्रयाण एक अच्छा निर्णय हो सकता था, परन्तु विद्रोहियों के द्वारा ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया। उन्होने ब्रिटिश सैनिक केंद्रों और पुलों तथा संचार के साधनों को नष्ट करने जैसी आधारभूत कार्यवाहियों का संचालन नहीं किया।

विद्रोह की असफलता का एक मुख्य कारण उसके नेताओं, सैनिकों और नागरिकों में किसी भी उच्च आदर्श का न होना था। विद्रोह का कारण न तो राष्ट्र भक्ति थी और न जन कल्याण, यहाँ तक कि धर्म की सुरक्षा भी विद्रोहियों का लक्ष्य न रहा था। इस कारण वे कभी संगठित न हो सके। संदेह, मतभेद, पारस्परिक झगड़े और व्यक्तिगत या स्थानीय हितों की सुरक्षा पर ही विद्रोह रहा। जबकि उनके विरोधी अंग्रेज, नि:संदेह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अपने साम्राज्य की सुरक्षा और अपने परिवार वालों के कत्ल करने वालों के प्रति प्रतिरोध की भावना को लेकर युद्ध कर रहे थे।

उपरोक्त कारणों से 1857 का विद्रोह असफल हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रथम अवसर था जब अंग्रेजों को अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिये खतरा उपस्थित हुआ। अंग्रेज सरकार की एकता, नीति और दृढ़ता ने इस विद्रोह को दबाने में सफलता पाई। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की कूटनीति भी उनकी सफलता का एक मुख्य कारण बनी। अपनी कूटनीति के कारण ही उन्होने भारतीय सैनिकों को सिक्खों के विद्रोहियों के विरुद्ध, पठानों, अफगानों और गोरखों के विरुद्ध और पुन: गोरखों और पठानों को भारतीय सैनिकों के विरुद्ध प्रयोग ला सके। इसी प्रकार अंग्रेज सिंधिया और निजाम का भी सहयोग प्राप्त कर सके। यह सभी कार्य अंग्रेजों की कूटनीतिक सफलता के कारण ही सम्भव हो सके या भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना के अभाव के कारण, यद्यपि इस बात का निर्णय विवादास्पद हो सकता है, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्रोह के अवसर पर यह अंग्रेजों की सफलता और भारतीयों की असफलता का मुख्य कारण था।

प्रश्न.2. प्रेसीडेन्सी सेनाओं के सम्मिश्रण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। (2003)

उत्तर. प्रसीडेन्सी सेनाओं का विलय: -

1857 का विद्रोह चाहे राष्ट्रीय रहा हो या क्षेत्रीय, देश भक्तिपूर्ण रहा हो या संकीर्ण

(iv) सीमित साधन -

संसाधनों की कमी क्रांतिकारियों की विफलता का प्रमुख कारण बनी। भारतीय विद्रोहियों के पास बन्दूकें बहुत थोड़ी थी और वे प्रायः तलवारों, भालों और लाठियों से लड़े। नये हथियार और गोलाबारूद हासिल करने का उनके पास कोई स्रोत नहीं था। उनका सामना एक ऐसे शत्रु से था, जिनके पास आधुनिकतम शस्त्रास्त्र थे। इसके अलावा विद्रोहियों के पास कोई संचार व्यवस्था नहीं थी, जिससे वे अपने कार्यकलापों में तालमेल स्थापित कर सकें। यातायात के साधन केवल अंग्रेजों को ही उपलब्ध थे, जिसकी सहायता से उन्होने अपने सैनिक, शस्त्र, रसद एवं सूचनाएं तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सफल हुए। जबकि विद्रोही एक दूसरे की सहायता न कर पाने के कारण अकेले ही लड़े।

जहाँ भारत में अंग्रजों को लगातार ब्रिटेन से अनुशासित जवान, आवश्यक धन एवं युद्ध सामग्री प्राप्त होती रही, वहीं विद्रोहियों में केन्द्रीय नियन्त्रण का आभाव रहा। सिर्फ आधे अधूरे साहस से ही शक्तिशाली शत्रु को, जिसने अपनी युद्ध कुशलता से नियोजित की हो, को पराजित नहीं किया जा सकता था। अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता देखकर अधिकांश भारतीय सिपाही धीरे-धीरे अपने गाँव लौट गये। जबकि अंग्रेजों की भारत पर अधिकार बनाये रखने की दृढ़ इच्छा शक्ति ने सारे साम्राज्य के साधनों का प्रयोग किया। 1 लाख 12 हजार अंग्रेज सैनिक संसार के विभिन्न भागों से भारत भेजे गये तथा तीन लाख दस हजार भारत में ही भर्ती किये गये।

इसके अतिरिक्त विद्रोहियों ने दिल्ली के महत्व को नहीं समझा। दिल्ली शक्ति की जड़ और भारत पर शासन का केंद्र थी। अंग्रेज इस मनोविज्ञान को समझते थे। अतः उन्होंने अपनी सैनिक टुकड़ियों को भेजकर दिल्ली को घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के बाहर के विद्रोहियों को चाहिये कि वे अंग्रेजों को ऐसा करने से रोकते। विद्वानों का ऐसा मानना है कि दिल्ली के बाद कलकत्ता की ओर प्रयाण एक अच्छा निर्णय हो सकता था, परन्तु विद्रोहियों के द्वारा ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया। उन्होंने ब्रिटिश सैनिक केंद्रों और पुलों तथा संचार के साधनों को नष्ट करने जैसी आधारभूत कार्यवाहियों का संचालन नहीं किया।

विद्रोह की असफलता का एक मुख्य कारण उसके नेताओं, सैनिकों और जनसाधारण में किसी भी उच्च आदर्श का न होना था। विद्रोह का कारण न तो राष्ट्र भक्ति थी और न जन कल्याण, यहाँ तक कि धर्म की सुरक्षा भी विद्रोहियों का लक्ष्य न रहा था। इस कारण वे कभी संगठित न हो सके। संदेह, अविश्वास, पारस्परिक झगड़े और व्यक्तिगत या स्थानीय हितों की सुरक्षा पर ही विद्रोह रहा। जबकि उनके विरोधी अंग्रेज, निःसंदेह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अपने साम्राज्य की सुरक्षा और अपने वेतन खाने वालों के साथ करने वालों के प्रति प्रतिशोध की भावना को लेकर युद्ध कर रहे थे।

उपरोक्त कारणों से 1857 का विद्रोह असफल हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अवसर था जब अंग्रेजों को अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिये खतरा उपस्थित हुआ। अंग्रेज सरकार की एकता, नीति और दृढ़ता ने इस विद्रोह को दबाने में सफलता पाई। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की कूटनीति भी उनकी सफलता का एक मुख्य कारण बनी। अपनी कूटनीति के कारण ही उन्होंने भारतीय सैनिकों को सिक्खों के विद्रोहियों के विरुद्ध, पठानों, अफगानों और गोरखों के विरुद्ध और पुनः गोरखों और पठानों को भारतीय सैनिकों के विरुद्ध प्रयोग ला सके। इसी प्रकार अंग्रेज सिंधिया और निजाम का भी सहयोग प्राप्त कर सके। यह सभी कार्य अंग्रेजों की कूटनीतिक सफलता के कारण ही सम्भव हो सके या भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना के अभाव के कारण, यद्यपि इस बात का निर्णय विवादास्पद हो सकता है, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्रोह के अवसर पर यह अंग्रेजों की सफलता और भारतीयों की असफलता का मुख्य कारण था।

प्रश्न.2. प्रेसीडेन्सी सेनाओं के सम्मिश्रण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। (2003)

उत्तर. प्रसीडेन्सी सेनाओं का विलय: -

1857 का विद्रोह चाहे राष्ट्रीय रहा हो या क्षेत्रीय, देश भक्तिपूर्ण रहा हो या संकीर्ण

स्वार्थों के कारण हुआ हो, इस ऐतिहासिक घटना ने ब्रितानी साम्राज्य की नींव हिला दी। भारत के एक बड़े क्षेत्र पर से ब्रितानियों का नियंत्रण टूट चुका था और अंग्रेजी लोग आतंक की छाया में जी रहे थे। विशेष रुप से गंगा के मैदानी क्षेत्रों में प्रतिशोध के लिए जोर से चिल्लाते, हिंसोन्मत, खून बहाते विद्रोहियों के विरुद्ध संघर्ष में ब्रितानी अधिकारियों और सिपाहियों को जो घाव लगे थे, वे बहुत गहरे थे। ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग बहुत दूरदर्शी व्यक्ति था और उसने इस तथ्य को समझा कि क्रोध और प्रतिशोध के सामंजस्य के बिना भारत पर प्रशासन करना कठिन होगा।

1 नवम्बर 1858 को समारोह पूर्वक राजकीय घोषणा की गयी कि ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी होगी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अस्तित्व को समाप्त कर दिया गया। ब्रिटिश राज सत्ता ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सशस्त्र आवरण को उतार दिया और अंतिम गवर्नर लार्ड कैनिंग भारत का प्रथम वायसराय और गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया बना। भारत पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ कंट्रोल और बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के दोहरे शासन का अंत हुआ। हवाइटहाल पर भारत के लिए एक मंत्री नियुक्त हुआ, जो कि ब्रितनी संसद के प्रति उत्तरदायी होता था और शासन की शक्ति की पूरी बागडोर उसके हाथों में होती थी। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में एक खातक गवर्नर जनरल बोर्ड ऑफ कंट्रोल को प्रयोग कर अपना काम निकाल लेता था। परन्तु जब 1870 में भारत और इंग्लैण्ड के बीच सीधे टेलीग्राफ लाइन स्थापित हो गयी, भारत मंत्री का वायसराय पर पूर्ण एवं प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित हो गया।

परन्तु जहाँ तक सेना का सम्बन्ध था, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारतीय सेनाएं और ब्रितानी सैनिकों के पुनर्गठन की प्रबल आवश्यकता प्रतीत हुई और इसके साथ ही साथ उनकी भूमिका में आमूल परिवर्तन हो गया, क्योंकि इस समय तक सेनाओं का निर्माण मुख्य रुप से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शत्रुओं से लड़ने के लिए किया जाता था। तत्पश्चात् यह एक व्यवसायिक सेना के रुप में रखी गयी जो कि भारत की आंतरिक सुरक्षा को बनाये रखने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली थी। यह सेना भारत ब्रितानी शत्रुओं के विरुद्ध विदेशी संकटों का सामाना करने में असमर्थ थी। यह एक वाद-विवाद का विषय कि क्या यूरोपीय सिपाही ब्रिटिश इम्पीरियल आर्मी के भाग होंगे या वे एक अलग स्थानीय सेना के रुप में केवल भारत में सेवा करेंगे। लार्ड कैनिंग ने बाद में चलकर इसे वरीयता प्रदान की और इसे अधिक विश्वसनीय माना और सोचा कि यह ब्रिटिश अधिकारियों और व्यक्तियों की एकता और भारत सरकार के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने वाला सिद्ध होगा। इस धारणा के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया जैसे ब्रिटिश इम्पीरियल आर्मी की एकता दूसरे अन्य तथ्यों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी। अत: इस अलग-अलग स्थितियों की सेवा में नहीं बाँटा जा सकता था। 1858 के ऐक्ट में यह प्रावधान था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पैदल और घुड़ सेना ब्रिटिश साम्राज्य की सेना का अंग मानी जायेगी और वे ब्रिटिश कार्य की सेवा के लिए उसी प्रकार उत्तरदायी होगी जिस प्रकार वे ईस्ट इण्डिया की सेवा के लिए बाध्य थी। इस प्रकार रॉयल सैनिक, राजकीय सैनिक और कम्पनी का यूरोपीय सैनिक के बीच एक शताब्दी से चला आ रहा भेद समाप्त हो गया।

परन्तु यह परिवर्तन किसी भी साधन से सरल और व्यवस्थि नहीं बनाया जा सकता था और जब लोगों ने इस एक्ट के बारे में सुना तब उनमें बहुत ही उत्तेजना, क्रोध और असंतोष उत्पन्न हुआ। लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद, मेरठ, दानापुर, जबलपुर, कानपुर, बहराइच, मद्रास और बंगलौर की यूरोपीय रेजीमेंटों ने इस पर आपत्ति की और यहाँ-वहाँ आवाज और बगावत भी हुई। गोरों के विद्रोह ने भारत राजमंत्री, गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति का इस समस्या के समाधान हेतु ध्यान आकृष्ट किया। यूरोपीय रेजीमेंटों, ब्रितानी अधिकारियों और व्यक्तियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उन्होंने केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा की शपथ ली थी और उनकी सेवाओं को महारानी को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता जब तक कि उनको इस उद्देश्य के लिए पुन: सूचीबद्ध और नया इनाम नहीं मिल जाता है। इन ब्रितानी सैनिक अधिकारियों द्वारा भारत मंत्री और ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्मुख बहुत सी याचिकाएँ, ज्ञापन, स्मरण पत्र प्रस्तुत किये गये।

10 नवम्बर 1858 को कमांडर इन चीफ कैम्पबेल ने अपने विचारों को चीफ ऑफ स्टॉफ के द्वारा ब्रितानी सरकार के पास भेज दिया, जिसमें ब्रितानी सैनिकों के पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहा गया था कि उनका उत्तरदायित्व केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा के लिए था और इसमें ब्रिटिश सम्राट की सेवा का कोई विकल्प नहीं था। कमांडर इन चीफ की ओर से चीफ ऑफ स्टाफ ने सुझाव दिया कि प्रत्येक व्यक्ति की सेवा को एक भाग से दूसरे भाग में स्थानांतरित करने से पूर्व स्वतन्त्र व्यक्तिगत सहमति निश्चित रुप से ली जानी चाहिये।

13 नवम्बर 1858 को यह स्पष्ट किया गया कि 1858 का अधिनियम बहुत ही स्पष्ट है। इसके अभिप्राय पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के यूरोपीय सैनिकों को इसके बारे में साफ-साफ शब्दों मे सूचित किया गया था कि उनकी सेवा मुक्ति या ईनाम के साथ पुनः सेवारत किये जाने की शर्त अस्वीकार है। इस सम्बन्ध में 8 नवम्बर 1859 को एक सामान्य आदेश फोर्ट विलियम कलकत्ता से जारी किया गया। जिसने आग में घी डालने का काम किया एवं 'गोरी बगावत' की आग भड़ उठी और इसने गवर्नर जनरल को अपने निर्णय पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य कर दिया।

7 मई 1859 में कमाण्डर इन चीफ ने अनुमति प्रदान की कि वे लोग जिन्होंने सेवा मुक्ति हेतु कुछ आम विद्रोह नहीं किया था, उन्हें सेवा निवृत्त कर दिया जाय। 24 मई 1859 को महारानी विक्टोरिया का जन्म दिन मनाने के लिए बंगलोर में आयोजित परेड समारोह में मद्रास की बन्दूक धारी सैनिकों की टुकड़ी ने भाग लेने से इन्कार कर दिया। कुछ ब्रितानी सैनिकों ने व्यंगपूर्ण टिप्पणी की कि उनको और बैलों की भाँति महारानी को स्थानान्तरण कर दिया गया और हो सकता है कि कल को अमेरिका को पुनः स्थानान्तरित कर दिया जाय। अब वे व्यक्ति नहीं रहे, बल्कि बिना सहमति के हस्तानान्तरणीय मवेशी और वस्तु हो गये हैं। अंतोगत्वा ब्रितानी सेना के अधिकारियों और लोगों को सेवामुक्त होने का विकल्प प्रदान कर दिया गया और इस सम्बन्ध में अधिसूचना 11 सितम्बर 1860 को जारी कर दी गयी। तीनों प्रेसीडेंसियों की कुल सेना जिसने सोलह हजार लोग में से दस हजार एक सौ सोलह (10116) सैनिकों ने सेवा मुक्ति ले ली। जिन लोगों ने सेवा मुक्ति ली थी उसमें से (2809) दो हजार आठ सौ नौ ने इंग्लैण्ड में ब्रिटिश सेना में पुनः सेवारत हो गये।

कम्पनी के यूरोपीय सैनिकों का ब्रिटिश सेना के साथ एकीकरण और भारत में ब्रितानी सेनाओं के पुनर्गठन का कार्य 1860 के अंत तक पूरा नहीं किया जा सका। 26 फरवरी 1861 को एक विशेष आयोग इस कार्य को पूरा करने के लिए गठित किया गया। 10 अप्रैल 1861 को गवर्नर जनरल की परिषद ने कम्पनी के यूरोपीय सैनिकों का ब्रितानी सेना के साथ एकीकरण लागू करने का आदेश दिया।

इस प्रकार ब्रितानी पैदल सेना ब्रिटिश सेना की एक बटालियन हो गयी और ब्रितानी सेना में पैदल सैनिकों की नौ और अश्वारोही सेना की तीन बटालियनें और जुड़ गयी। बंगाल, मद्रास और बम्बई का तोपखाना और उसकी सहायक भारतीय इंजीनियरिंग कोर को क्रमशः ब्रिटिश रॉयल आर्टिलरी और रॉयल इंजीनियरिंग में विलय हो गया। इसके साथ ही साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बंगाल, मद्रास और बम्बई की प्रथम बंदूकधारी रेजीमेंट का चयन "रॉयल" जैसी प्रतिष्ठित उपाधी प्रदान करने हेतु दिया गया।

प्रश्न. 3. 1857 के बाद भारतीय सेना के पुर्नगठन की विवेचना कीजिये। (2005, 08, 10)

उत्तर. भारतीय सेनाओं का पुर्नगठनः -

ठीक इसी समय भारतीय सेनाओं का भी पुर्नगठन किया गया। यद्यपि पुर्नगठन का यह कार्य 1865 के अंत तक पूरा नहीं हो सका फिर भी बंगाल की सेना को भंग कर दिया गया और उस सेना में भर्ती होने वाले पूर्वी क्षेत्र अर्थात पश्चिम विहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और अवध को असैनिक वर्ग क्षेत्र घोषित कर दिया गया और सेना में इनकी भर्ती पर रोक लगा दी गयी। 15 जुलाई 1858 को रिटायर्ड मेजर जनरल जोनाथन पील की अध्यक्षता में एक रॉयल कमीशन का गठन लंदन में इस उद्देश्य से किया गया कि सेना की वर्तमान सेवा के संगठन के वेतन की जाँच और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नियंत्रण एवं व्यवस्था की

वर्तमान प्रणाली में क्या-क्या परिवर्तन लाभकारी हो सकता है? बारह प्रमुख समस्याएं कमीशन को सौपी गयी। कमीशन के बड़ी संख्या में ब्रितानी अधिकारियों की भारत के विषय में जानकारी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवाओं के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे एवं साक्षात्कार किया। पील कमीशन को मद्रास, बम्बई, बंगाल के कमांडर इन चीफ, गवर्नर, वायरस और गवर्नर जनरल द्वारा भेजे गये ज्ञापनों एवं कागजातों सहित बड़ी संख्या में दूसरे साक्ष्यों को सौप दिया गया। कमीशन में 7 मार्च 1859 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी।

कमीशन ने यह अनुभव किया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवाओं का ब्रिटिश क्राउन को स्थानान्तरण किया जा सकता है और उनके प्रमुख सुझाव निम्नवत थे -

1. भारत में 80 हजार की एक स्थायी ब्रिटिश सेना (50 हजार बंगाल, 15 हजार मद्रास, 15 हजार बम्बई) तैनात की जानी चाहिये।
2. सेना में भारतीय और यूरोपीय सैनिकों का अनुपात बंगाल के लिए 2:1 और बम्बई तथा मद्रास के लिए 3:1 निश्चित कर दिया गया।
3. तोपखाना मुख्यत: यूरोपीय सेना की इकाई होगी, इससे भारतीय को दूर रखा जाय।
4. सेना के यूरोपीय हिस्से का ब्रिटिश रॉयल सेना के साथ एकीकरण लागू किया जाय।
5. यूरोपीय सेनाओं का भारत में सेवाकाल 12 वर्ष से अधिक नहीं होगा।
6. भारतीय और यूरोपीय सेनाओं का प्रत्येक ब्रिगेड में मिश्रण ही सर्वाधिक लाभप्रद होगा।
7. भारतीय अश्वारोही और पैदल सेना के लिए अनियमित सेवा पद्धति लागू होगी।

कमीशन को जो समस्याएं निदान हेतु सौपी गयी थी, के अतिरिक्त अन्य सुझाव भी दिये गये जो निम्नवत है-

1. सेना के विभिन्न जातियों और राष्ट्रीयताओं के लोगों की भर्ती की जाये और इसका चलन नियम की भाँति रेजीमेंट स्तर तक किया जाना चाहिये।
2. सभी भारतीयों की भर्ती सामान्य सेना के लिए होगी।
3. भारतीय सैनिकों की वर्दी में सुधार किया जाय जो देश की परिस्थिति एवं जलवायु के अनुकूल हो।
4. सेना की अग्रणी टुकड़ी का गठन किया जाय।
5. प्रमुख अधिकारियों की प्रशासनिक शक्ति बढ़ा दी जाय।
6. भारत के कमीशन प्राप्त और गैर कमीशन प्राप्त अधिकारियों की पदोन्नति उनकी क्षमता और योग्यता के अनुसार की जाय न कि वरिष्ठता के आधार पर।
7. बंगाल की संना का कमांडर इन चीफ सम्पूर्ण भारत की सेना का कमांडर इन चीफ होगा।
8. विभिन्न रेजीमेंटो में सेवारत अधिकारियों का क्रम विन्यास स्टॉफ कोर की संरचना के द्वारा होगा।

पील आयोग 1857 की घटनाओं और उसके प्रभावों से काफी हद तक प्रभावित था। पील आयोग द्वारा विभिन्न साक्ष्यों की व्याख्या और प्रस्तुत किये गये सुझाव अंग्रेजों के डर और भारतीय सैनिकों के प्रति उनके विश्वास में कमी पर आधारित थे। जिससे वे इस सर्वसम्मत पर निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनकी आज उनके साम्राज्य की सुरक्षा के लिए यह अति आवश्यक है कि भारतीय को सैनिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया जाय। इस उद्देश्य के लिए प्रमुख दो उपाय किये गये।

1. भारतीय सैनिकों को तोपखाने की रेजीमेंट से निकाल दिया गया और उन्हें बंदूक और बारुद से दूर रखा, परन्तु फिर भी जब उन्हें आयुध प्रदान करना अति आवश्यक हो तब उन्हें निम्न स्तर की तोपे और बन्दूकें तथा निश्चित मात्रा में ही गोला बारुद दिया जाये।
2. भारतीय सैनिकों की विभिन्न जातियों को संतुलित करने के लिए एक प्रणाली को विकसित किया जाय, जिसके द्वारा एक जाति या समुदाय को दूसरी जाति या समुदाय के विरुद्ध प्रयोग किया जा सके। जिससे साम्राज्यवादी संतुलन को बनाये रखा जा सके।

यूरोपीय और भारतीय सेनाओं के बीच, भारतीय राजाओं की सेना और ब्रितानी सेना के मध्य और भारतीय सेनाओं की विभिन्न रेजीमेंटों तक में उपरोक्त नीति लागू किया गया। पील आयोग के अनुसार

"बाँटों और राज्य करों" की नीति ब्रितानी साम्राज्य के अनुकूल होगी। इसे सावधानी पूर्वक लागू करके ही ब्रितानी हितों की रक्षा होगी।

इस प्रकार ब्रितानी और भारतीय सेनाओं का 1857 के विद्रोह के उपरान्त पुनर्गठन किया गया। यह पुनर्गठन की प्रक्रिया पूरे ब्रितानी साम्राज्य के काल में विभिन्न अधिनियम, संगठनात्मक परिवर्तनों, नियंत्रण और निर्देशनों की प्रणाली संबंधित विविध परिवर्तन समय-समय पर होते रहे।

प्रश्न.4. किचनर के सुधारों के मुख्य अंश बताइये। (2003)

अन्य सम्बन्धित प्रश्न -

प्रश्न. किचनर के सुधारों के मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिये। (2004, 07, 09, 13)

प्रश्न. लार्ड किचनर के सुधारों की विवेचना कीजिये। (2011)

उत्तर. किचनर के सुधार: -

1857 के विद्रोह के बाद भारत के लिए सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित सैन्य नीति तैयार की गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी बन्द कर दी गयी तथा उसकी सेनाओं का ब्रिटिश इम्पीरियल सेना के साथ मिला दिया गया। भारतीय सेना के पुर्नगठन के दौरान आगे चलकर 1 अप्रैल 1895 में प्रेसीडेंसी सेनाएं समाप्त कर दी गयी और पहली बार एकीकृत भारतीय सेना अस्तित्व में आयी। जिसे प्रशासन के प्रयोजन से नीचे लिखी चार कमानों में बाँट दिया गया। प्रत्येक कमान एक गवर्नर के आधीन थी जो सीधे कमांडर इन चीफ के आधीन थे।

(i) पंजाब कमान (पश्चिमोत्तर सीमांत सहित)
(ii) बंगाल कमान
(iii) मद्रास कमान (वर्मा सहित)
(iv) बम्बई कमान (सिन्ध, क्वेटा और अदन सहित)

भारत को सैनिक और असैनिक दोनो ही तरीके से शासन करने का उत्तरदायित्व सपरिषद गवर्नर जनरल का था। जो भारत सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के प्रति और उसके जरिये ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था। गवर्नर जनरल के परिषद मे सैन्य मामलों से संबंधित दो सदस्य थे (i) कमांडर इन चीफ जो सेना का और उसके संगठन एवं दक्षता के लिए उत्तरदायी था। उसका कार्यालय सेना मुख्यालय कहलाता था जिसमें एक एडजूटेंट जनरल और दूसरा, क्वार्टर मास्टर जनरल और प्रमुख चिकित्सा अधिकारी होते थे। एक सेना सदस्य भी होता था जो सेना के प्रशासनिक कार्य के लिए उत्तरदायी होता था तथा सरकार के आदेश को कमांडर इन चीफ तक पहुँचाता था, साथ ही आपूर्ति, सैनिक निर्माण कार्य और सैन्य वित्त के लिए भी उत्तरदायी था। मार्च 1900 में लार्ड कर्जन ने भारतीय सेनाओं मे कई नये परिवर्तन किये। सर्वप्रथम भारतीय सेना को थ्री नाट थ्री (303) राइफलें प्रदान की गयी। आपूर्ति विभाग के नाम से एक आपूर्ति कोष का गठन किया गया। पैदल सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए स्कूल खोले गये। पर्वतीय क्षेत्रों के लिए नई तोपें लायी गयी। तोपखानों का आधुनिकीकरण किया गया। तोपखाने की टुकड़ी मे घोड़ों की संख्या बढ़ायी गयी। घोड़ों के प्रजनन केंद्र खोले गये तथा सैनिक अस्पताल का केंद्र खोला गया। इसी बीच भारतीय राष्ट्रीय अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा कि - राष्ट्रीय सीमाओं की रक्षा के लिए भारतीय सैनिकों और औधकारियों को स्वतंत्र उत्तरदायित्व मिलना चाहिये और किसी भी दशा में नागरिक नियंत्रण को सैन्य नियंत्रण में नहीं सौपा जाना चाहिये। इसके साथ ही गोखले ने सीमा और सीमांत के लोगों की सेना में बहुतायत भर्ती का विरोध भी किया। 1905 में लार्ड कर्जन ने एक विशेष आयोग का गठन किया। इसी बीच 28 नवम्बर 1902 में किचनर भारतीय सेना का प्रधान सेनापति के रुप में भारत आया। जिसको भारत इस उद्देश्य से भेजा गया था कि वह रुसी आक्रमण से निपटने के लिए भारतीय सेना में कारगर सुधार करे। इसके लिए किचनर ने भारतीय सेना के संगठन, सैनिकों के वितरण, प्रशिक्षण, गतिशीलता और

क्रियात्मक नियंत्रण को पुर्नवठित करने का निश्चय किया। जनवरी 1903 को भारतीय स्टाफ कोर के स्थान पर भारतीय सेना शब्य का प्रयोग किया गया और इण्डियन स्टाफ कोर के ब्रितानी सेना के अधिकारी भारतीय सेना के अधिकारी के रुप में जाने जाने लगे। 9 जनवरी 1903 को बर्मा को मद्रास कमान से अलग कर दिया गया। 1 अप्रैल 1903 को हैदराबाद रेजीमेंट विघटित कर दी गयी और उसकी अश्वरोही टुकड़ी को बम्बई कमान के साथ और उसकी पैदल सेना की टुकड़ी को मद्रास कमान के साथ मिला दिया गया।

भारतीय सेना की सभी यूनिटों को नई संख्याएं और ईनाम राशी प्रदान की गयी। 2 अक्टूबर 1903 को भारतीय सेना आदेश संख्या 181 के तहत दक्षिण भारत की कई रेजीमेंटों को भंग कर दिया गया और उनके स्थान पर उत्तर भारत की सैनिक जातियों को नियुक्त किया गया। जुलाई 1903 में लार्ड किचनर ने यह शिकायत दर्ज की कि सेना सारे देश में बिना किसी कारण और बिना किसी व्यवस्था के फैली हुई है। 5 नवम्बर 1903 को किचनर ने भारत में सेना के पुर्नगठन और पुर्नवितरण के प्रस्ताव का एक प्रारुप का पत्रसेना मुख्यालय के क्वार्टर जनरल द्वारा भारत सरकार के सैन्य विभाग के सचिव के पास भेजा। इस ज्ञापन के चार प्रमुख उद्देश्य थे -

1. सेना के संगठन और वितरण की उस न्यूनतम सीमा की खोज करना जिसके द्वारा आंतरिक सुरक्षा के लिए आवश्यक सेना की संख्या में कमी की जा सके। ताकि हम शक्तिशाली यूरोपीय शक्ति के विरुद्ध भारतीय सीमांतो को रक्षा के लिए अपनी पूरी लड़ाकू शक्ति को युद्ध क्षेत्र में तैनात कर सके।
2. आंतरिक सुरक्षा को बनाये रखना सेना का द्वितीयक कर्तव्य था। अत: आंतरिक सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सेना की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिये कि युद्धक सेना का एक समूह अपने आधारभूत दायित्व वाह्य शत्रु के विरुद्ध साम्राज्य की रक्षा के लिए स्वतंत्र रखी जा सके।
3. इस योजना का उद्देश्य एक ऐसे युद्ध संगठन कर निर्माण करना था, जिसमें प्रत्येक यूनिट और व्यक्ति का एक स्थान निर्धारित होगा और इस प्रकार युद्ध के लिए पूरी तैयारी, उचित प्रशिक्षण सुनिश्चित करके सेनाओं को आगामी युद्ध के लिए व्यापक रुप में तैयार कर युद्ध क्षेत्र में तैनात किया जा सके।
4. अंतिम रुप में इस योजना का उद्देश्य शांति कालीन सैन्य विचरन को युद्ध संगठन के अनुरुप बनाना कठिन न हो जिससे शांतिकालीन दशा से युद्धकालीन दशा में परिवर्तन, जो कि सेना के प्रयाण के समय घटित होता है, को बिना किसी बाधा के स्वतंत्रतापूर्वक पूरा किया जा सके।

क्वार्टर मास्टर जनरल के पत्र में इस तथ्य की व्याख्या की गयी थी कि भारत में सेना का मूल्यांकन, संगठन और वितरण का कार्य पैबन्द लगाने जैसा है। क्योंकि समय समय पर सेना की टुकड़ियाँ जुड़ती जाती है तो दूसरी भंग कर दी जाती है। बैरको, लाइनों का निर्माण स्टेशनों पर किया गया था, जिनका कोई दीर्घकालीन महत्व नहीं है। अत: इनको विस्तारण अपेक्षा भंग कर दिया जाना चाहिये। इस सैन्यनीति को एक निश्चित योजना के साथ व्यापक रुप से आगे बढ़ाना होगा।

लार्ड किचनर की इस नीति के अंतर्गत भारत को नौ क्षेत्रों में विभक्त किया गया और प्रत्येक क्षेत्र में पूर्णरुपेण सुसजित युद्धक सेना की एक डिवीजन को तैनात किया गया। तोपखाने की कोर के लिए 15 बैटरी और पर्याप्त संख्या में सैनिक प्रत्येक क्षेत्र की रक्षा के रक्षा करने के लिए गतिशील रुप में गठित किये गये। अदन, बर्मा, चितराल, कोहात और डेटाजाट को इन नौ क्षेत्रों से अलग रखा गया। सैन्य स्टेशनों की अनिवार्य किलेबदीं की पद्धति का उन्मूलन कर दिया गया और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुसार सैनिकों का वितरण किया गया।

32 हजार 8 सौ 30 स्वयं सेवकों और सशस्त्र पुलिस (22 हजार 3 सौ 99 सैनिक पुलिस और 24912 सशस्त्र नागरिक पुलिस) को प्रत्येक क्षेत्र की रक्षा के लिए तैनात नियमित सैनिकों के साथ जोड़ दिया गया। युद्ध के लिए प्रयाण के समय कुछ सैनिक छावनियाँ स्वयं सेवको और पुलिस को हस्तान्तरित की जा सकती थी। नागरिक सेना और स्थानीय सेवा में भर्ती सैनिकों को सीमांत जनपदों की रक्षा में लगाया जाता था। फील्ड आर्मी की नौ डिवीजनों का गठन तीन आर्मी कोरों के रुप में किया गया जो कि उत्तरी पूर्वी और पश्चिम आर्मी के नाम से जानी जाती थी। प्रत्येक कोर के साथ सेना की तीन-तीन डिवीजने रखी गयी। प्रत्येक

सत्र 2018 का हल प्रश्न पत्र

प्रश्न.1. कौटिल्य के 'सप्तांग' सिद्धान्त का वर्णन कीजिये। (2018)

Q. Describe the 'Saptang' principle of Kautilya. (2018)

उत्तर. प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन के आचार्यों ने राज्य का स्वरूप सप्तांग, सप्तात्मक अथवा सप्त प्रकृति युक्त निर्धारित किया है। उनका मत है कि राज्य के सात अंग अथवा राज्य की सात प्रकृतियां होती हैं, जिनके संयोग से राज्य का निर्माण होता है। आचार्य कौटिल्य ने भी राज्य के सप्तांग स्वरूप को स्वीकार किया है और राज्य के इन सात अंगों को राज्य की सात प्रकृतियों की संज्ञा दी है। इन्होंने क्रमशः 1. स्वामी (राजा) 2. आमात्य 3. जनपद 4. दुर्ग 5. कोष 6. दण्ड (सेना) 7. मित्र, नाम से सम्बोधित किया है महाभारत, मनु, मानवधर्म शास्त्र, शुक्रनीति, कामन्दक, सोमदेव सूरि आदि विचारकों ने अपनी रचनाओं में राज्य के सप्तांग को ही स्वीकार किया है।

राजा -

सभी राजनीतिक चिन्तकों की ही भांति आचार्य कौटिल्य ने भी सात अंगों में सर्वोपरि और सबसे महत्वपूर्ण स्थान राजा को ही प्रदान किया है। कौटिल्य के अनुसार राजा राज्य की धुरी होता है। कौटिल्य ने संक्षेप में राजा को राज्य बताया है। एक अन्य स्थल पर राजा को ही शासन का पुरुष निर्माता बताया है। यदि राजा सशक्त और सक्षम है तो राज्य के अक्षम और निर्बल तत्वों को भी सुदृढ़ बना सकता है। इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि कौटिल्य के चिन्तन का केन्द्र राजा है और उसका सम्पूर्ण युद्ध दर्शन इसी केन्द्र पर आवृत है। कौटिल्य ने राजा की योग्यता, उसके गुण, ज्ञान, प्रतिष्ठा, कर्तव्य एवं स्थिति आदि का बड़े विस्तार से विवेचन किया है। राजा के गुणों पर प्रकाश डालते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि राजा उच्च कुलीन, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, कृतज्ञ, वचनबद्ध, उत्साही, दूरदर्शी, विनयशील, मृदुभाषी, कार्यकुशल, स्पष्ट वक्ता, न्यायशील, तर्क-वितर्क में प्रवीण, तत्वज्ञान, शास्त्र एवं शस्त्र में पारंगत, सन्धि-विग्रह के सम्यक ज्ञान वाला, प्रजापालक, शत्रु की दुर्बलताओं को समझने वाला और राजकोष में वृद्धी करन वाला होना चाहिये। इतना ही नहीं आचार्य कौटिल्य ने राजा की समस्त दिनचर्या तक का व्यवस्थित विवरण भी दिया है।

कौटिल्य ने राजा की शिक्षा को अनिवार्य बताया है। अशिक्षित व्यक्ति को राजपद के अयोग्य बताया है। राजा के लिये अपेक्षित गुणों के साथ-साथ उसकी दिनचर्या, कार्यव्यवहार आदि पर भी व्यापक प्रकाश डाला है। यद्यपि राजा राज्य की सभी सर्वोच्च सत्ताओं का केन्द्र था, फिर भी कौटिल्य ने लिखा है कि राजा का प्रमुख कर्तव्य यह है कि वह प्रजाहित में शासन करे।

आमात्य -

एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकार्य भी बिना सहायता एवं सहयोग के नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिये कि योग्य आमात्यों की नियुक्ति कर सुझावों को स्वीकार करे।

आचार्य कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती सभी राजनीतिक चिन्तकों के विचारों का उल्लेख करते हुए आमात्य नियुक्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि आचार्य भरद्वाज का मत है कि राजा अपने सहपाठियों को आमात्य नियुक्त करे, क्योंकि वह उसकी हृदय की पवित्रता और कार्यक्षमता से सुपरिचत होता है। आचार्य विशालाक्ष इसे उचित नहीं मानते क्योंकि सहपाठी आमात्य राजा का तिरस्कार कर सकता है। इसलिए आमात्य उनको बनाना चाहिये जो गुप्त कार्यों में राजा का साथ देते हों।

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भरद्वाज से लेकर बाहुदंती पुत्र इन्द्र तक की विचार परम्परा अपने अपने स्थान पर उचित है। परन्तु किसी भी व्यक्ति की सामर्थ्य कार्य की सफलता पर निर्भर करती है और उसकी यह कार्य क्षमता बुद्धी-विद्या के बल पर ही आंकी जा सकती है। अतः आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि आमात्य नियुक्त करने के पूर्व राजा को चाहिये कि वह प्रमाणिक,

सत्यवादी एवं आप्त पुरूषों के द्वारा उनके निवास स्थान तथा उनकी आर्थिक स्थिति का, सहपाठियों के माध्यम से उसकी योग्यता तथा शास्त्र ज्ञान का, नये-नये कार्यों में नियुक्ति कर उसकी बुद्धि, स्मृति और चतुराई का, व्याख्यानों एवं सभाओं के माध्यम से उनकी वाकपटुता एवं प्रतिभा का, आपत्तियों में उनके उत्साह, प्रभाव तथा सतर्कता का, पड़ोसियों के माध्यम से उनके शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिर वृत्ति का पता लगाये और उसके मृदु भाषी तथा द्वेष रहित प्रकृति की राजा स्वयं परीक्षा करने के उपरान्त ही किसी व्यक्ति को आमात्य पद पर नियुक्त करे।

राजा को चाहिये कि वह उच्च कुल, उच्च विचार, शास्त्रों का ज्ञाता तथा अनुभवी व्यक्ति को आमात्य बनाये। अपने निकट सम्बन्धी और सहपाठी में से किसी को भी आमात्य न बनाये। उसे की निष्ठा की परीक्षा समय-समय पर करता रहे। उसने इस परिक्षा के लिए कई उदाहरण भी दिये। जैसे राजा, राज्य पुरोहित को अपमानित करके हटा दे अथवा सेनापति को पदच्युत कर दे। या पदच्युत पुरोहित, आमात्य को राजा के विरूद्ध होने के लिए प्रेरित करे अथवा पदच्युत सेनापति आमात्य को राजा की हत्या के लिए प्रेरित करे। जो आमात्य इस प्रकार की परिक्षा में भी सफल हो उसे ही आमात्य बनाया जाय।

जनपद -

आचार्य कौटिल्य का विचार है कि राजा को दूसरे देश के मनुष्यों को बुलाकर अथवा अपने आबादी को बढ़ाकर पुराने या नये जनपदों की स्थापना करे। प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पांच सौ घर वाले ऐसे गाँव बसाये जाये जहा अन्न, शुद्ध और हिरण्य अधिक हो। एक के दूसरे गाँव से कोस या दो कोस से अधिक दूर नहीं होना चाहिये, जिससे शान्ति या आपद काल में एक दूसरे का सहयोग और सहायता कर सके। बसाये गये गांवो की सीमा निर्धारित की जानी चाहिये।

आठ सौ गाँवों के बीच एक 'स्थानीय', चार सौ गाँव के समूह में एक 'द्रोणमुख', दो सौ गाँवों के बीच मे एक कार्वटिक और दस गाँवों के समूह में एक संग्रहण नामक स्थानों की विशेष रूप से स्थापना करे। आचार्य कौटिल्य कृषकों को खेती के प्रोत्साहन, कृषकों के उत्थान एवं सहायक सिंचाई, पशुधन वृद्धि और निर्वाह हेतु राजा को पिता के समान सब अवश्य खर्च करते रहने का सुझाव देता है। वानप्रस्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा सन्यासी जनपद में नहीं रहना चाहिये इसी प्रकार राजभक्त जनसंघ तथा सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त दूसरी संस्था या संघ राज्य में न स्थापित होने पाये जो, विद्रोह या फूट का कारण बने। गाँवों मे नाट्य, विहार तथा क्रीड़ा शालाओं को अधिक महत्व है क्योंकि इससे कृषि कार्य मे विघ्न उत्पन्न होता है। राजा को गाँवो की रक्षा हेतु शत्रुओं, आटविकों का अकाल, व्यापारिक मार्गों की असुरक्षा का परिशोधन करे। जनपद का अर्थ राज्य क्षेत्र और उसमे निवास करने वाली जनता दोनों से है। अतः किसी भी जनपद में दुर्ग, खेती योग्य पर्याप्त भूमि, वन, हाथियों के वन, चारागाह, खनिज पदार्थ और प्रजा में कर देने की क्षमता होनी चाहिये। जनपद में उनकी की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये।

दुर्ग -

प्रश्न संख्या 6, पृष्ठ संख्या 23 पर देखें।

कोष -

राजा और राज्य के लिए कोष की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए आचार्य 'टिल्य ने लिखा है कि राज्य की समस्त गतिविधियों के सुचारू रूप से संचालन, बाह्य आक्रमण, न एवं दैवीय आपत्तियों के समय व्यय करने हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। अतः राजा को 'वजों द्वारा संग्रहित कोष में स्वयं धर्मानुसार अर्थ संग्रह करना चाहिये। कोष का सम्बन्ध राजा य व्यवस्था से था कौटिल्य ने लिखा है कि जो राजा कोष संग्रह से उदासीन रहता है उस राजा 'क्ष्मी शीघ्र राज्य छोड़कर चली जाती है और वह विनाश के गर्त मे डूब जाता है।